MPAMT-601

ताल शास्त्र I

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी

MPAMT-601

ताल शास्त्र

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर

संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग

मानविकी विद्याशाखा

उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
तीनपानी बाईपास रोड, ट्रान्सपोर्ट नगर के पीछे,
हल्द्वानी, जिला नैनीताल, पिनकोड–263139
फोन नं0 : 05946–286000 / 01 / 02
फैक्स नं0 : 05946–264232,
टोल फ्री नं0 : 18001804025
ई–मेल : **info@uou.ac.in**
वेबसाईट : **www.uou.ac.in**

MPAMT-601

अध्ययन मंडल

कुलपति (अध्यक्ष)
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रो0 एच0 पी0 शुक्ल (संयोजक)
निदेशक–मानविकी विद्याशाखा,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 विजय कृष्ण (सदस्य)
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 आशा पाण्डे कृष्ण(सदस्य)
विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
एच0एन0बी0 गढ़वाल विश्वविद्यालय,
श्रीनगर

डॉ0 मल्लिका बैनर्जी (सदस्य)
संगीत विभाग,
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त.)
विश्वविद्यालय, दिल्ली

द्विजेश उपाध्याय (सदस्य)
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)
संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संयोजन, प्रूफ रिडिंग एवं फार्मेटिंग

प्रदीप कुमार
सहायक प्राध्यापक,
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

जगमोहन परगांई
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

अशोक चन्द्र टम्टा
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

प्रकाश चन्द्र आर्या
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.),
संगीत नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय,
हल्द्वानी, नैनीताल

पाठ्यक्रम संपादन

डॉ0 विजय कृष्ण
पूर्व विभागाध्यक्ष, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

डॉ0 चन्द्रशेखर तिवारी
वरिष्ठ संगीतज्ञ,
हल्द्वानी, नैनीताल

डॉ0 रेखा साह
पूर्व विभागाध्यक्षा, संगीत विभाग,
डी0एस0बी0 कैम्पस, नैनीताल,
कुमाऊँ विश्वविद्यालय, नैनीताल

द्विजेश उपाध्याय
सहायक प्राध्यापक(ए.सी.)–संगीत, नृत्य एवं कला प्रदर्शन विभाग,
उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल

इकाई लेखन

1.	डॉ0 विजय कृष्ण	इकाई 1, 2, 3 व 4

कापीराइट : @उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय
संस्करण : सीमित वितरण हेतु पूर्व प्रकाशन प्रति
प्रकाशन वर्ष : जुलाई 2021
प्रकाशक : उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी, नैनीताल–263139
ई–मेल : books@uou.ac.in

इस सामग्री के किसी भी अंश को उत्तराखण्ड मुक्त विश्वविद्यालय, हल्द्वानी की लिखित अनुमति के बिना किसी भी रूप में अथवा मिमियोग्राफी, चकमुद्रण द्वारा या अन्यत्र पुनः प्रस्तुत करने की अनुमति नहीं है।

एम0पी0ए0 संगीत – तृतीय सेमेस्टर
ताल शास्त्र I – एम0पी0ए0एम0टी0–601

इकाई	इकाई का नाम	पृष्ठ
इकाई 1	पखावज व तबले की उत्पत्ति, विकास एवं उपयोगिता।	1–11
इकाई 2	पखावज के वर्ण, वादन विधि एवं घरानों का अध्ययन; तबले के घरानों एवं उनकी वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन।	12–42
इकाई 3	मार्गी ताल, देशी ताल एवं उत्तर भारतीय तालों का वर्तमान स्वरूप।	43–54
इकाई 4	ताल के प्राण (काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति व प्रस्तार) का विस्तृत अध्ययन एवं वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता।	55–70

इकाई 1 – पखावज व तबले की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता

1.1 प्रस्तावना
1.2 उद्देश्य
1.3 पखावज एवं मृदंग का भेद
1.4 पखावज की उत्पति
1.5 पखावज का विकास
1.6 पखावज की उपयोगिता
1.7 तबले की उत्पति
1.8 तबले का विकास
1.9 तबले की उपयोगिता
1.10 सारांश
1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री
1.14 निबन्धात्मक प्रश्न

1.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0पी0ए0एम0टी0–601 पाठ्यक्रम की पहली इकाई है। पूर्व में आप प्राचीन ताल पद्धति एवं वर्तमान ताल पद्धति को एवं उनके तुलनात्मक पक्ष को जान चुके होंगे। इसके साथ ही आप उत्तर भारतीय एवं दक्षिण भारतीय ताल पद्धति का अध्ययन कर इनके भेद को समझ गए होंगे। आप तबला के एकल वादन एवं संगत की पद्धति को भी समझ गए हैं। आप अपने पूर्व के पाठ्यक्रम की तालों का परिचय एवं उनको लयकारी में लिपिबद्ध करना भी जान गए हैं। भारतीय संगीत के विद्वानों एवं कलाकारों के विषय मे आपने अध्ययन किया है एवं उनके व्यक्तित्व एवं कृतित्व से भी आप परिचित हो चुके हैं।

इस इकाई में आप पखावज एवं तबला वाद्य के विषय में अध्ययन करेंगे। पखावज एवं तबला वाद्य की उत्पति, विकास एवं इन दोनों अवनद्य वाद्यों की संगीत में उपयोगिता के विषय मे अध्ययन करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पखावज एवं तबला वाद्य की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता को जानेंगे एवं अध्ययन का उपयोग अवनद्य वाद्य के सैद्धान्तिक पक्ष को समझने में भली–भॉति कर सकेंगे।

1.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. पखावज वाद्य की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता को समझेंगे।
2. पखावज और मृदंग के भेद को समझेंगे जिससे पखावज एवं मृदंग शब्द की भ्रान्ति दूर होगी।
3. की तबले की उत्पति के विषय में भ्रान्ति दूर होगी।
4. तबले की विकास यात्रा एवं इनके उपयोग को समझेंगे।

1.3 पखावज एवं मृदंग का भेद

पखावज का प्राचीन नाम मृदंग था, यदपि प्राचीन अवनद्य वाद्य मृदंग का आकार पखावज की अपेक्षा छोटा था परन्तु आकार छोटा–बडा होने से वाद्य के नाम परिवर्तन का कोई औचित नहीं है। प्राचीन एवं मध्यकालीन संगीत में मृदंग नाम से ही अवनद्य वाद्य का परिचय मिलता है। मृदंग के स्थान पर पखावज नाम का प्रयोग मध्ययुग से प्रारम्भ हुआ। पन्द्रहवीं शताब्दी तक कहीं भी पखावज शब्द का प्रयोग प्राप्त नहीं होता।

चित्र संख्या 1

चित्र संख्या 2

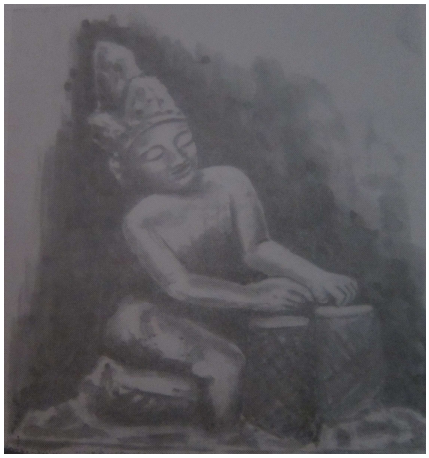

चित्र संख्या 3

चित्र संख्या 4

चित्र संख्या 5

चित्र संख्या 6

पखावज शब्द का प्रयोग मुगलकाल के पश्चात ही प्रचार में आया परन्तु फिर भी पखावज एवं मृदंग दोनों शब्दों का प्रयोग एक ही अवनद्य वाद्य के लिए होता रहा, जो परम्परा वर्तमान में भी स्थापित है। आज उत्तर भारतीय संगीत परम्परा में मृदंग एवं पखावज दो पृथक अवनद्य वाद्य नहीं है। पखावज, मृदंग शब्द का ही पर्यायवाची है जो कि मध्ययुग में प्रचलित हुआ। विमलकान्त राय चौधरी ने अपनी पुस्तक "भारतीय संगीत कोश" में पखावज के परिचय के रुप लिखा है कि "पखावज" फारसी शब्द **पख** तथा **आवाज** से बना है। पख–आवाज का अर्थ है जिसमें मन्द ध्वनि निकलती हो। पखावज को ही मृदंग कहा जाता है।

मध्ययुग में उत्तर भारत में कभी मृदंग एवं कभी पखावज के नाम से यह अवनद्य वाद्य प्रचलित था। अकबर के युग के कलाकारों एवं वाद्यों का वर्णन करते हुए आचार्य बृहस्पति ने भी संगीत चिन्तामणी पुस्तक में पखावज का उल्लेख किया है। मध्यकालीन भक्त कवियों ने अपनी भक्ति संगीत की रचनाओं में मृदंग एवं पखावज दोनों ही शब्दों का प्रयोग किया है।

मृदंग शब्द संस्कृत भाषा का है जो मृत +अंग के संधि से बना है। मृत का अर्थ मिट्टी एवं अंग के दो अर्थ हैं शरीर एवं अंश अथवा भाग। अतः मृदंग शब्द के दो अर्थ प्राप्त होते हैं – प्रथम ऐसा वाद्य जिसका पूर्ण शरीर अथवा अंग मिट्टी का बना हो एवं द्वितीय ऐसा वाद्य जिसका एक अंश मिट्टी का बना हो। प्राचीन समय में मृदंग मिट्टी का बनाया जाता था एवं बाद में मिट्टी का स्थान लकड़ी ने ले लिया। भाषा की दृष्टि से मृदंग शास्त्रीय शब्द है और पखावज लोक व्यवहार का है। दक्षिण भारत में मृदंगम प्रचलित है एवं उसकी संरचना एवं वादन शैली उत्तर भारत के पखावज से भिन्न है। अतः परिणाम स्वरूप उत्तर भारत में मृदंग एवं पखावज एक ही हैं एवं पखावज की उत्पत्ति, विकास एवं उपयोगिता पर चर्चा में मृदंग शब्द आने पर आप भ्रमित न हो।

1.4 पखावज की उत्पत्ति

विद्वानों के अनुसार मृदंग भारतीय संगीत का आदि ताल वाद्य है। भारतीय संगीत के समस्त वाद्यों का सम्बन्ध हिन्दु देवी–देवताओं से माना गया है एवं इनकी उत्पत्ति के सम्बन्ध में देवी–देवताओं से सम्बन्धित किवदन्तियां प्रचलित हैं। भरत मुनि के काल में त्रिपुष्कर वाद्य अवनद्ध वाद्य के रूप में प्रचलित था, इसी वाद्य से मृदंग का रूप भी विकसित हुआ। अतः पुष्कर वाद्यों के विषय में भरत द्वारा नाट्यशास्त्र में वृतांत दिया गया है कि त्रिपुष्कर वाद्य के आविष्कार की प्रेरणा स्वाति मुनि को वर्षा ऋतु में पुष्कर (तालाब) के विभिन्न आकार के कमल पत्रों पर जल की बूंदो से उत्पन्न विभिन्न गम्भीर एवं मधुर ध्वनियों से हुई। इसीलिए इन्हें पुष्कर वाद्य कहा गया। स्वाति मुनि के आदेश पर विश्वकर्मा द्वारा तीन मुखों से युक्त मिट्टी से वाद्य निर्मित किया गया जिसको त्रिपुष्कर वाद्य कहा गया। इसके तीन रूपों को आंकिक, उर्ध्वक एवं आलिंग्यक कहा गया। भरत मुनि द्वारा मृदंग का त्रिपुष्कर के रूप में वर्णन किया गया है अर्थात तीनों भागों को मिलाकर ही मृदंग वाद्य समझा जाता था।

भरत ने मृदंग को 'पुष्करत्रय' भी कहा। शारंगदेव ने भी इसको 'पुष्करत्रय' कहा जिसके तीन भाग थे आंकिक, उध्वर्क और अलिंग्यक। आंकिक, अंक अथवा गोद में रख कर बजाया जाना वाला वाद्य। उध्वर्क, आकाष की ओर करके बजाया जाना वाला वाद्य एवं इसके साथ बजाया जाना वाद्य आलिंग्यक था। आलिंग्यक उध्वर्क के साथ आलिंगित था इसलिए इसे 'आलिग्यंक' कहा गया। आंकिक में आज के मृदंग एवं पखावज के समान दो मुख होते थे जिसके बायें एवं दाऐं दक्षिण दो मुख होते थे जिनको क्रमशः बांया एवं दाहिना भी कहा जाता था। उध्वर्क एवं आलिंग्यक में एक–एक मुख ही होता है, जिस प्रकार आज तबले में दो भाग दाहिना एवं बांया होते है जिनको साथ–साथ बजाया जाता है एवं पूरे को तबला कहते है। इसी प्रकार भरत ने आंकिक, उध्वर्क एवं आलिंग्यक को साथ–साथ बजाने पर मृदंग या 'पुष्करत्रय' कहा। इस 'पुष्करत्रय' अथवा मृदंग में सर्वाधिक प्रमुख आंकिक था। उध्वर्क एवं आलिंग्यक को साथ बजाने को द्विपुष्कर वाद्य भी कहा जाता है। अर्थात आज का मृदंग अथवा पखावज आंकिक एवं द्विपुष्कर तबला वाद्य के समरूप है। प्राप्त चित्रों से प्राप्त तथ्य के आधार पर त्रिपुष्कर वाद्य का वादन समग्र रुप में एवं अलग–अलग रुप मे होता था। आंकिक एवं द्विपुष्कर वाद्य उर्ध्वक एवं आलिंग्यक वाद्य के वादन के चित्र प्राप्त होते है। चित्र संख्या 1 में आंकिक एवं द्विपुष्कर वाद्य का वादन प्रदर्शित किया गया। चित्र संख्या 2 में द्विपुष्कर वाद्य का वादक दर्षाया गया है। चित्र संख्या 3 में केवल आंकिक वादक को दर्शाया गया है। अतः त्रिपुष्कर वाद्य के उर्ध्वक एवं अलिंग्यक भागों की जोडी अर्थात द्विपुष्कर वाद्य को एक वाद्य के रुप में बजाए जाने की प्रथा भी विद्यमान थी, जो कि वर्तमान के तबला जोडी के समरुप है। प्राचीन चित्रों मे महिलाओं के तबला वादन के प्रमाण भी प्राप्त होते हैं। चित्र संख्या 4 में तम्बूरा बजाते महिला के नीचे महिला तबला बजाते दिखाई गई है एवं चित्र संख्या 5 में तबला वादिका के रुप में महिला को दिखाया गया है। महिलाओं के साथ नृत्य में तबला वादक तबले को कमर में बांध कर भी बजाया करते थे जो कि चित्र संख्या 6 में चित्रित है।

एक अन्य किवदन्ति के आधार पर त्रिपुरासुर राक्षस के वध के पश्चात भगवान शंकर ने नृत्य किया जिसकी संगति के लिए ब्रहमा जी द्वारा मृदंग की रचना की गई, जिसका वादन प्रथम बार गणेश जी ने किया। यह मृदंग मिट्टी से निर्मित किया गया था। वैदिक साहित्य में भूमि दुदुंभि एवं दुदंभि वाद्यों का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु मृदंग वाद्य का वर्णन नहीं है। अतः वैदिक काल में मृदंग का आविष्कार नहीं हुआ था। मार्कण्डेय पुराण में वीणा, दुदुंभि, मृदंग, पुष्कर आदि वाद्यों का परिचय प्राप्त होता है। अतः पौराणिक काल में मृदंग की उत्पति हुई जान पडती है।

1.5 पखावज का विकास

भरत का नाट्यशास्त्र संगीत का आदि ग्रन्थ है जिसमें संगीत एवं वाद्यों का परिचय प्राप्त होता है। मृदंग का सर्वप्रथम परिचय नाट्यशास्त्र में ही मिलता है जिसमें मृदंग के आकार, प्रकार एवं शैली का वर्णन किया है। त्रिपुष्कर के तीन भाग उर्ध्वक व आलिग्य खडे होते थे एवं आंकिक लेटे हुए होता था। 12वीं शताब्दी में त्रिपुष्कर का स्वरुप परिवर्तित हुआ जिसमें उर्ध्वक एवं आलिग्य हट गए केवल आंकिक ही रह गया, जो बाद में मुरज एवं मृदंग के नाम से प्रचलित हुआ। यह उत्तर भारत में मृदंग अथवा पखावज एवं दक्षिण भारत में मृदंगम के नाम से आज भी प्रचलित है। वर्तमान मृदंग भरतकालीन मृदंग का केवल एक ही भाग है जो कि आंकिक था।

पौराणिक काल में मृदंग वाद्य का प्रचार था। रामायण काल में संगीत का विकास हुआ। रावण स्वयं संगीत कला का विद्वान था। रामायण एवं महाभारत काल में वीणा एवं मृदंग का प्रचार था एवं सामाजिक एवं धार्मिक उत्सवों पर मृदंग वादन के वृतांत प्राप्त होते हैं। रामायण एवं महाभारत काल में मुरज वाद्य का उल्लेख प्राप्त होता है। मुरज एवं मृदंग एक ही वाद्य थे। महाभारत काल के पाण्डव पुत्र अर्जुन उत्कृष्ट कोटि के मृदंग वादक थे। आचार्य शारंगदेव ने मुरज एवं मृदल को मृदंग का ही पर्याय कहा है। भरत ने भी मुरज को ही मृदंग का पर्याय कहा एवं इसे अवनद्य वाद्यों में सर्वश्रेष्ठ माना है। शारंगदेव के समय तक जाति एवं प्रबन्ध गायन प्रचलित था जिसकी संगति के लिए मृदंग का ही प्रयोग किया जाता था।

मध्य युग में ध्रुपद एवं धमार गायन शैली का विस्तृत प्रचार हुआ एवं इसी के साथ मृदंग की वादन शैलियों का भी विकास हुआ। ध्रुपद जैसी ओज पूर्ण गायन शैली के साथ मृदंग वाद्य की संगति ही उपयुक्त समझी जाती थी। संगीत सम्राट तानसेन एवं सन्त हरिदास ध्रुपद ही गाया करते थे एवं

उनके साथ मृदंग अथवा पखावज की संगत की जाती थी। इसी काल में मृदंग का पखावज नामकरण भी प्रचलित हुआ। श्री नाथ मन्दिरों में हवेली संगीत भी प्रचार में आया एवं इसके साथ भी पखावज की ही संगति की जाती थी। संगीत के माध्यम से भक्ति धारा भी मध्य युग में स्थापित हुई। मीरा, सूरदास आदि भी संगीत के मर्मज्ञ थे। इनके पदों में पखावज एवं मृदंग शब्दों का प्रयोग मिलता है। उदाहरण के लिए मीरा का पद देखिए जिसके अन्तरा पद में पखावज आया है एवं इस पद में होरी का वर्णन है :–

फागुन के दिन चार रे, होरी खेल मनाओं ।
बिन करताल पखावज बाजे, अनहद की झंकार ।
मीरा के प्रभु गिरधर नागर, चरण कमल बलिहार।

सूरदास के पद का उदाहरण निम्न हैः–

अब मै नाच्यो बहुत गोपाल,
महा मोह के नुपुर बाजत, निदां शबद रसाल,
भरम भरयो मन भयो पखावज, चलन कुसंगत चाल।

पखावज वादन की कला मन्दिरों एवं राज दरबारों में विकसित हुई। भक्ति युग में मन्दिरों में भजन कीर्तन के साथ पखावज की संगति की जाती थी जो परम्परा श्रीनाथ मन्दिर द्वारा एवं ब्रज क्षेत्र के मन्दिरों में आज भी देखने को मिलती है। राज दरबारों में पखावज वादकों ने सम्मान पाया है एवं अपनी कला को विकसित किया जिसमें संगीत प्रिय राजाओं ने महत्वपूर्ण योगदान दिया। राजा अकबर ने लाला भगवान दास की पखावज वादन शैली से प्रभावित एवं प्रसन्न होकर जावली ग्राम उपहार में दिया था जहां से पखावज के विभिन्न घराने विकसित हुए।

मध्य युग में यद्यपि मृदंग अथवा पखावज का उल्लेख प्राप्त होता है परन्तु इन वृत्तातों में कहीं भी उस समय की वादन शैली का वर्णन प्राप्त नहीं होता है। किसी भी वाद्य के विकास में मुख्य रुप से उसकी वादन शैली रहती है, अतः वादन शैली के विकास से ही किसी वाद्य के विकास का परिचय प्राप्त होता है। पौराणिक काल, रामायण काल, महाभारत आदि में केवल मृदंग वादन का ही वर्णन है परन्तु वादन शैली का कोई परिचय प्राप्त नहीं होता। अतः पखावज की विकास यात्रा अकबर के काल में ही प्रारम्भ हुई जब पखावज की निष्चित वादन शैली भगवान दास पखावजी के द्वारा आरम्भ की गई तथा जिनके वंषजों एवं शिष्यों ने विभिन्न स्थानों पर पखावज की वादन शैली विकसित की जिससे पखावज उत्तर भारत का प्रतिष्ठित अवनद्य वाद्य स्थापित हुआ। पखावज की नई शैलियों का जन्म हुआ जिन्होनें घरानों का रुप लिया। इन घरानों का पखावज के विकास में महत्वपूर्ण योगदान है। अतः पखावज के घरानों का विकास क्रम समझने की आवश्यकता भी है जो कि पखावज वादन शैली का विकास क्रम भी है।

लाला भवानीदीन अथवा भवानी सिंह को पखावज वादन शैली का प्रणेता कहा जाता है। इनके शिष्य ताज खॉ डेरेदार, कादिर बख्श (प्रथम), कुदऊ सिंह एवं बाबू जोध सिंह ने पखावज के घराने स्थापित किए। कादिर बख्श द्वारा पंजाब घराने की नींव पडी, कुदऊ सिंह के नाम से ही घराना स्थापित हुआ एवं बाबू जोध सिंह के षिष्य नाना पानसे ने अपनी मौलिक शैली सृजित की जो पानसे घराने के रुप में स्थापित हुई। पखावज के पंजाब घराने के कलाकारों ने बाद में पखावज की वादन शैली एवं पंजाब के लोक अवनद्य वाद्य दुक्कड वाद्य की वादन शैली के आधार पर तबले का घराना स्थापित किया।

पखावज की वादन शैली के विकास में बल्लभ सम्प्रदाय का भी विशेष योगदान है। यहॉ की रासलीला ने मृदंग वादन की शैली को विकसित किया। बृज–मथुरा क्षेत्र में कोढ़िया के द्वारा कोढिया घराने की स्थापना हुई। इनके एक पुत्र जटाधर द्वारा वादन शैली की यह परम्परा बृज–मथुरा में प्रचारित एवं विकसित की गई। कोढिया के दूसरे पुत्र केवल किशन बहुत समय तक बंगाल में रहे, अतः इन्होंने बंगाल में अपनी वादन शैली विकसित कर इसको बंगाल में खूब फैलाया। स्वामी विवेकानन्द ने भी इनसे पखावज की शिक्षा ली। वीरेन्द्र किशोर राय चौधरी एवं लाल चन्द्र बौराल ने बंगाल मे पखवाज वादन की इस परम्परा को विकसित किया।

केवल किशन एवं जटाधर की शिष्य परम्परा से अवधी घराने की स्थापना हुई जिसमें राम मोहिनी शरण एवं स्वामी पागल दास ने पखवाज वादन में नई रचनाएं कर पखवाज वादन शैली को समृद्ध किया एवं लोकप्रिय बनाया। रामपुर दरबार में कुदउ सिंह घराने की परम्परा के अयोध्या प्रसाद ने पखवाज वादन में बहुत नाम कमाया। इनके पुत्र राम जी लाल शर्मा एवं षिष्य रमाकान्त पाठक वर्तमान में भी पखावज वादन शैली को विकसित करने में प्रयत्नरत है।

नाना पानसे ने पखावज पर सरल एवं कोमल बोलों से मधुर वादन शैली विकसित की जिसको अधिक तैयारी के साथ बजाया जा सकता था। पानसे की वादन शैली सम्पूर्ण भारत में लोकप्रिय हुई। पखावज की वादन शैली को विकसित करने में नाना पानसे का महत्वपूर्ण स्थान एवं योगदान है।

किसी भी वाद्य की भौतिक संरचना होने के बाद उसके विकास में महत्वपूर्ण होती है उसकी वादन शैली की विशेषता। वाद्य की लोकप्रियता भी उसकी वादन शैली पर ही निर्भर करती है। वर्तमान में पखावज की लोकप्रियता एवं इसकी विकसित वादन शैली का श्रेय पखावज के पूर्व एवं वर्तमान के कलाकारों को ही जाता है।

मध्य युग में वीणा एवं रबाब वाद्यों का प्रचलन था एवं इन पर ध्रुपद शैली का वादन किया जाता था जिसकी संगति भी पखावज से ही की जाती थी। यह परम्परा आज तक विद्यमान है। नृत्य के साथ भी पखावज की संगति की जाती थी। पखावज पर विभिन्न प्रकार की देवी–देवताओं की स्तुति परन की रचना भी की गई जो कि नृत्य में भी प्रयोग की गई।

1.6 पखावज की उपयोगिता

उत्तर भारतीय संगीत के पखावज एवं तबला दो अवनद्ध वाद्य हैं। गायन में ख्याल गायन एवं वाद्यों पर गतकारी वादन शैली ने तबले को अधिक प्रचलित किया परन्तु पखावज की उपयोगिता संगीत क्षेत्र में बनी रही। ध्रुपद–धमार गायन शैली, सुरबहार, रूद्रवीणा आदि पर पखावज की संगति ही की जाती है। कत्थक नृत्य में भी पखावज वाद्य भी उपस्थित रहता है। पखावज के एकल वादन के कार्यक्रम भी संगीत सभाओं की शोभा रहते है। पखावज एवं तबला की जुगलबन्दी की प्रस्तुति भी आकर्षक रहती है। तबले की लोकप्रियता के साथ–साथ पखावज की उपयोगिता एवं लोकप्रियता है। पखावज की रचनाओं को तबला वादकों द्वारा अपनाया गया एवं तबले पर प्रस्तुत भी किया जाता है। मुख्यतः नाना पानसे घराने की रचनाऐं तबले पर प्रस्तुत करने पर आकर्षण पैदा करती हैं। बनारस घराने में पखावज की रचनाओं को प्रस्तुत किया जाता है। भवानीदीन जो कि पखावज वादन शैली के प्रवर्तक थे इन्होंने पखावज के पंजाब घराने की नींव डाली थी। बाद में पंजाब के लोकवाद्य दुक्कड़ एवं पखावज का आधार लेकर पंजाब का तबला घराना स्थापित हुआ एवं पंजाब का पखावज घराना तबले के घराने में परिवर्तित हो गया, वर्तमान में जिसके लोकप्रिय कलाकार जाकिर हुसैन हैं। पखावज वादन की शैली तबले के बनारस घराने एवं पंजाब घराने के लिए उपयोगी सिद्ध हुई। संगीत जगत में पखावज की उपयोगिता सदैव बनी रहेगी।

1.7 तबला की उत्पत्ति

तबले की उत्पत्ति कब, कैसे और किसने की इस पर अभी तक किसी निश्चित परिणाम पर नहीं पहुॅचा जा सका है। इसके लिए संगीत विद्वानों ने प्राप्त तथ्यों के आधार पर अपने–अपने मत दिये हैं इनके आधार पर ही हम तबले की उत्पति के विषय में जानने का प्रयत्न करेंगे। सर्वप्रथम समझने का प्रयास करते है कि तबला शब्द कैसे एवं एक विशिष्ट अवनद्य वाद्य के लिए प्रतिष्ठित हुआ।

संगीत जगत के जन सामान्य में यह बात प्रचलित है कि मृदंग को बीच से काटकर दो भाग किये गये एवं इनको खड़ा करके बजाया गया जिसको तबला कहा गया। ये दो भाग मृदंग को काटने पर भी बोले अतैव तब भी बोला। इस शब्द का अपभ्रंश हो कर तब(भी)+ बोला=तब बोला >तबोला > तबला शब्द प्रचार में आया। परन्तु यह उक्ति तर्क संगत एवं वैज्ञानिक प्रतीत नहीं होती है। भरत कालीन युग में त्रिपुष्कर वाद्य का उल्लेख है। त्रिपुष्कर अर्थात तीन प्रकार के पुष्कर 'वाद्य'। इसमें दो

पुष्कर उध्वर्क एवं आलिंग्य खड़े थे एवं तीसरा आंकिक पुष्कर लेटा हुआ था। अतः मृदंग से पूर्व त्रिपुष्कर वाद्य लय एवं ताल हेतु संगीत में प्रयुक्त होता था तथा पखावज को काटने की बात तर्क संगत नहीं लगती जब कि उध्वर्क एवं आलिंग्य पुष्कर वाद्य पहले से ही विद्यमान थे। अतः यह सम्भव है कि पखावज एवं तबला दोनों ही त्रिपुष्कर वाद्य से प्रेरित होकर रचे गये हों। उर्ध्वक एवं आलिंग्य से तबला एवं आंकिक से मृदंग अथवा पखावज। कुछ विद्वानों द्वारा तबले की उत्पति को भरत कालीन दुर्दर वाद्य से माना है। दुर्दर वाद्य के मुख पर चमडा लगाया जाता था एवं इसका मुख आकाश की ओर होता था परन्तु यह दो भागों में नहीं था, तबले का स्वरुप दायें एवं बाएं भाग से मिलकर ही है। अतः उक्त उक्ति तर्क संगत नही लगती है। तबले की रचना मृदंग से प्रेरित होकर ही हुई। मृदंग के वर्णन के बारे मे यह तथ्य प्राप्त होता है कि मृदंग तीन भागों मे था। एक भाग गोद में रहता था दूसरे दोनों भाग उर्ध्वमुखी रहते थे। इन्हीं को भरत ने त्रिपुष्कर वाद्य भी कहा। मृदंग के दाऐं वाले भाग जिसको स्वर में मिलाया जाता था उसमे मिट्टी का लेप एवं बाऐं वाले भाग मे आटा लगाया जाता था। बाद मे मिट्टी के लेप के स्थान पर लोहे का चूर्ण लगाया जाने लगा एवं बाएं भाग पर आटा ही रहा। पंजाब मे आज भी बाएं तबले पर आटा लगाने की परम्परा है जो कि गुरुद्वारों मे रागी संगीत के साथ तबला वादन मे मिलती है। पंजाब का तबला घराना भी पंजाब के पखावज घराने की ही देन है।

संगीत के विद्वानों द्वारा 'तबला' का सम्बन्ध 'तबल' से भी जोड़ा गया है। 'तबल' फारस का एक अवनद्य वाद्य है। इसका अविष्कार सिकन्दर ने फारस जीतने के बाद किया था। 'तबल' वास्तव में अरबी शब्द था जिसका प्रयोग फारसी में किया जाने लगा।

एक किवदंती के अनुसार अरब में संगीत के विद्वान 'लमक' के पुत्र 'टुबुल' ने 'तबल' वाद्य का आविष्कार किया था। एक अन्य मान्यता के अनुसार 'त' से ताल, 'ब' से बोल एवं 'ल' से लय अर्थात ऐसा वाद्य जिसमें लय एवं ताल, वाद्य पर बजने वाले बोलों से प्रदर्शित हो तबला कहलाया। यह मान्यता प्राचीन मालूम नहीं होती वरन तबला वाद्य के स्थापित हो जाने के बाद वाद्य की व्याख्या को सरल भाषा में समझाने हेतु प्रयोग किया गया हो। तबला वाद्य की यह व्याख्या तर्क संगत लगती है। प्राचीन काल में तबला वाद्य के समरूप वादन शैली का कोई वाद्य हमें नहीं मिलता। तबला वादन का इतिहास बहुत पुराना नहीं है। ख्याल गायकी एवं तन्त्र वाद्य पर गतकारी वादन शैली के साथ ही तबला वादन शैली स्थापित हुई एवं इसके पश्चात, समय के साथ तबला वादन शैली का विकास हुआ। अतः तबले के अविष्कार के सम्बन्ध में भी जानने की आवश्यकता है।

तबले के अविष्कारक के रूप में सामान्य रूप से 13वीं शताब्दी के हजरत अमीर खुसरो को माना जाता रहा है। हकीम मुहम्मद करम इमाम ने अपनी पुस्तक 'मादनुल–मूसिकी' में हजरत अमीर खुसरो को 'तबल' वाद्य का आविष्कारक माना है यद्यपि उन्होंने तबल को ढोल जैसा वाद्य माना है। 'तबल' वाद्य ढोल एवं नगाड़े से सम्बन्धित माना गया है। 'तबल' वाद्य से तबला वाद्य को सम्बन्धित कर तबला वाद्य का आविष्कारक हजरत अमीर खुसरो को समझा जाने लगा एवं यह प्रचारित हुआ। हजरत अमीर खुसरो का समय तेरहवीं शताब्दी के उतरार्ध से चौदहवीं शताब्दी के पूर्वाध तब का है। हजरत अमीर खुसरो का जन्म सन् 1253 एवं मृत्यु सन् 1325 मानी जाती है। इन्होंने स्वयं अपने किसी ग्रन्थ में 'तबला' वाद्य का कोई जिक्र नहीं किया। परन्तु इस समय 'तबल' नाम से जिस अवनद्य वाद्य को जाना जाता था वह 'नगाड़ा' था जो कि युद्ध के समय बजाए जाने वाला वाद्य था। इसी समय अरब, फारस एवं तुर्की देशों में 'तबल' वाद्य प्रयोग में था परन्तु वह भी 'तबला' वाद्य जैसा नहीं था। हजरत अमीर खुसरो के तीन सौ वर्षों के बाद भी 'तबल' शब्द का प्रयोग युद्ध में बजाए जाने वाले अवनद्य वाद्य नगाड़े के लिए किया जाता था जिसका प्रकरण 'गुरूग्रन्थ साहब' एवं मलिक मोहम्मद जायसी की 'पद्मावत' में मिलता है। हजरत अमीर खुसरो के समय तेरहवीं शताब्दी से सत्रहवीं शताब्दी तक अवनद्य वाद्य के रूप में 'तबला' का उल्लेख कहीं भी प्राप्त नहीं होता है अतः 'तबला' वाद्य हजरत अमीर खुसरो के बाद अठ्ारवीं शताब्दी में ही स्थापित हुआ।

मध्य युग एवं अकबर के युग में भी किसी तबला वादक का कोई प्रसंग प्राप्त नहीं होता है। उस समय भी भगवान दास, फिरोज खॉ(पंजाब), कृपा राय पखावज वादकों का उल्लेख प्राप्त होता है। कृपा राय को औंरगजेब द्वारा मृदंग राय की उपाधि से भी सम्मानित किया गया था। पंजाब के फिरोज खाँ के षिष्यों द्वारा बाद में तबले के पंजाब घराने को स्थापित किया गया। मुगल काल में अलग–अलग समय पर खुसरो नाम के तीन भिन्न व्यक्तियों का संगीत से सम्बन्ध रहा है। पहले

तेरहवीं शताब्दी के हजरत अमीर खुसरो जिनके कव्वाली गायन, तबला, सितार वाद्य एवं राग सरपरदा, साजगिरी, झिल्लफ आदि रागों के अविष्कारक के रूप में प्रचारित किया गया। दूसरे खुसरो खाँ जो कि मूलतः गुजरात के थे, जिन्हें खिलजी शासन काल में गुजरात से बन्दी बनाकर दिल्ली लाया गया और वे बाद में मुसलमान हो गये थे, जो खुसरो खाँ नाम से प्रसिद्व हुए। बाद में इन्हीं खुसरो खाँ ने चार महीने दिल्ली पर भी राज किया एवं इनको नासिरूद्दीन उपाधि भी प्राप्त हुई थी। इन दोनों को ही तबला अविष्कारक मानना तर्क संगत नहीं है।

तीसरे खुसरों खाँ अठारवीं शताब्दी के मुहम्मद शाह रंगीले के समय के है। ये सुप्रसिद्व ख्याल रचियता नेमत खाँ, जिनका उपनाम सदारंग था के छोटे भाई एवं शिष्य थे। सुबोध नन्दी ने अपनी पुस्तक 'तबलार कथा' में बंगाल के सुप्रसिद्व संगीतज्ञ गोपेश्वर बन्दोपाध्याय द्वारा लिखित एक पत्र की चर्चा की जिसमें उन्होनें तबला के आविष्कार का श्रेय इस अठ्ठारवीं शताब्दी के खुसरो खॉ को दिया एवं इनका उल्लेख द्वितीय अमीर खुसरो के नाम से किया। गोपेश्वर बन्दोपाध्याय के पत्र के अनुसार – ''सम्राट अलाउद्दीन की सभा के अन्यतम विद्वान अमीर खुसरो खाँ तबला आविष्कारक कह कर अनेक लोग भूल करते हैं। मुगल बादशाह द्वितीय के समय सन् 1738 में रहमान खाँ नामक विख्यात पखावजी के पुत्र द्वितीय अमीर खुसरो ने कुछ दिन ख्याल गान सीखा था एवं इसी की संगत करने के लिए वर्तमान तबला वाद्य का आविष्कार किया।''

गोपेश्वर बंदोपाध्याय के अनुसार '' विष्णुपुर के विख्यात गायक स्वर्गीय गदाधर चक्रवती के छोटे भाई स्वर्गीय मुरलीधर चक्रवती दिल्ली गए थे एवं सबसे पहले उन्होंने सदारंग एवं उनके शिष्य अचपल से ख्याल गान सीखा। वे जब विष्णुपुर लौटे, तब मेरे पिता स्वर्गीय अनन्त लाल बंधोपाध्याय को बताया कि जब सदारंग ने ख्याल की रचना की तो प्रारम्भ में उसके साथ पखावज की संगत होती थी। परन्तु सदारंग को ख्याल गायन के साथ पखावज की संगत उपयुक्त नहीं लगी तब उनके शिष्य द्वितीय अमीर खुसरो ने तबला वाद्य की रचना की।

अतः उपरोक्त तथ्यों से यही निष्कर्ष निकलता है 'तबला' वाद्य के आविष्कारक अमीर खुसरो (द्वितीय) हैं जो मुहम्मद शाह रंगीले के समय के है ना कि हजरत अमीर खुसरो जो कि अलाउद्दीन खिलजी के समय के।

1.8 तबले का विकास

यह निश्चित है कि तबला वाद्य का निर्माण ख्याल गायन की संगत के लिए किया गया और बाद में इसकी विभिन्न वादन शैली विकसित हुई जो तबले के घरानों के नाम से जानी गयी। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को तबला वाद्य का मूल प्रवर्तक माना जाता है। अमीर खुसरो ने तबले की रचना की एवं सिद्धार खाँ ढाढ़ी ने इसकी वादन शैली स्थापित कर विकसित की। सिद्धार खाँ ढाढ़ी को दिल्ली घराने का प्रथम पुरूष माना जाता है एवं दिल्ली घराने को ही तबले का सबसे पुराना घराना माना जाता है। तबले के मुख्य छः घराने माने जाते हैं – दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रूखाबाद, बनारस एवं पंजाब। दिल्ली घराने के वंशजों द्वारा अजराड़ा एवं लखनऊ घराने की स्थापना हुई। लखनऊ घराने के कलाकारों द्वारा शिष्य तैयार कर फर्रूखाबाद घराना एवं बनारस घराने की नींव पड़ी। पंजाब घराना स्वतन्त्र रूप से पखावज वादन शैली से विकसित हुआ। इन घरानों के विकास क्रम से तबले की वादन शैली विकसित हुई, जिसने तबले को लोकप्रिय अवनद्य वाद्य बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया। तबले के घरानों का विस्तृत परिचय आप तबला एवं पखावज के घराने की इकाई में प्राप्त करेंगे।

तबला वाद्य के विकास में पखावज के साथ–साथ ढोलक, नक्कारा, ताशा आदि अनेक वाद्यों की वादन शैली का महत्वपूर्ण योगदान है। तबले पर लग्गी–लड़ी का प्रयोग ढोलक एवं ताशा की वादन शैली का प्रभाव है। पखावज की विभिन्न रचनाएं भी तबला वादन शैली में परिवर्तित कर बजाई जाती है। नाना पानसे की विभिन्न रचनाएं तबले पर बजाई जाती हैं। खब्बे हुसैन ढोलकिए की गतें एवं टुकडे भी तबले पर प्रयोग किए जाते हैं। तबला वादन शैली के लिए मुख्य रुप से कायदा, पेशकार, रेला बनाए गए थे, जिनका विभिन्न घरानों में अपनी वादन शैली के अनुसार विकास हुआ। पखावज पर भी रेले, गतें एवं परनें बजाई जाती थी। तबले के वर्णों से गतें एवं परनें निर्मित की गई। कायदा, पेशकार के विकास में मुख्य रुप से दिल्ली घराने का योगदान है, यद्यपि बाद मे अजराडा एवं

लखनऊ घराने में इनको अपने घराने की वादन शैली के अनुसार विकसित किया। तबले की गतों में महत्वपूर्ण योगदान फर्रुखाबाद घराने का रहा एवं फर्रुखाबाद घराने की गतें प्रसिद्ध हुई।

पंजाब एवं बनारस घराने द्वारा अपनी स्वतंत्र वादन शैली विकसित की गई। पिछले पॉच दशकों में तबले के विकास एवं लोकप्रिय बनाने मे देहली घराने के उस्ताद नत्थू खां एवं उस्ताद इनाम अली खां के शिष्यों ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। देहली घराने के उस्ताद लतीफ खां एवं शफात हुसैन खां लोकप्रिय तबला वादक हुए जिन्होनें एकल वादन एवं गायन, वाद्य एवं नृत्य की संगत कर देहली घराने को लोकप्रिय बनाया। उस्ताद अहमद जान थिरकवा जो कि उस्ताद नत्थू खां (देहली) एवं उस्ताद मुनीर खां फर्रुखाबाद के शिष्य थे, ने अपने समय में तबला वादन के क्षेत्र मे खूब ख्याति अर्जित की। अजराडा घराने के उस्ताज हबीबुद्दीन खां एवं उनके शिष्य रमजान खां ने अजराडा घराने को लोकप्रिय बनाया। दक्षिण भारत में उस्ताद शेख दाउद ने तबले का भरपूर प्रचार प्रसार किया एवं तबला वादन में षिष्य तैयार किए, जिन्होनें स्थान–स्थान पर तबले का प्रचार एवं प्रसार किया। बंगाल मे फर्रुखाबाद घराने के उस्ताद मसीत खां, उनके पुत्र करामतुल्ला खां ने तबले के विकास क्रम मे अपना योगदान दिया। वर्तमान मे उस्ताद करामतुल्ला के पुत्र शाबिर खां इस परम्परा में अपना योगदान दे रहे हैं। लखनऊ में उस्ताद मुन्ने खां ने भी तबले का प्रचार किया एवं स्व0 बेगम अखतर के साथ संगत कर विषेष ख्याति अर्जित की। बनारस घराने के मूर्धन्य कलाकार पं0 अनोखे लाल, कण्ठे महाराज, पं0 किषन महाराज, पं0 सामता प्रसाद (गुदई महाराज), पं0 रंगनाथ मिश्रा आदि ने बनारस घराने की वादन शैली को विकसित करने में महत्पूर्ण योगदान दिया। पंजाब घराने की वादन शैली में तबले के अनुरुप उस्ताद अल्लारखा खां द्वारा तबले की वादन शैली विकसित की गई एवं वर्तमान में इनके पुत्र उस्ताद जाकिर हुसैन इस परम्परा को आगे बढा रहे हैं।

वर्तमान में तबले की वादन शैली में जो विकास हुआ है एवं तबला सबसे अधिक लोकप्रिय अवनद्य वाद्य के रुप में संगीत के क्षेत्र मे प्रतिष्ठित है, इसका श्रेय उपरोक्त तबला वादकों को ही जाता है।

1.9 तबले की उपयोगिता

उत्तर भारतीय संगीत में तबला सबसे अधिक लोकप्रिय वाद्य है एवं इसकी उपयोगिता सबसे अधिक है। उत्तर भारत के शास्त्रीय संगीत, उपषास्त्रीय संगीत, सुगम संगीत सभी विधाओं में लय एवं ताल वाद्य के रूप तबला अनिवार्य अवनद्ध वाद्य के रूप में विद्यमान है। संगीत की गायन की विधा– ख्याल गायन, ठुमरी–दादरा गायन, भजन, गीत एवं गजल में तबला की ही संगत की जाती है, अन्य किसी अवनद्य वाद्य की संगत मान्य नहीं है। कव्वाली गायन का मुख्य अवनद्य वाद्य यद्यपि ढोलक था परन्तु वर्तमान तबला वाद्य भी अनिवार्य रूप से कव्वाली गायन में प्रयोग होता है। भजन में भी ढोलक बजाई जाती है परन्तु परिष्कृत भजन गायन शैली में तबला ही अधिक उपयोगी समझा जाता है। पिछले पॉच दषकों में तबला एकल वादन भी संगीत समारोह का आकर्षण रहा। गजल गायकी में तबला वादन का महत्वपूर्ण स्थान है। उपशास्त्रीय संगीत की विधा ठुमरी एवं दादरा में तबला पर लग्गी–लड़ी बजने से ठुमरी–दादरा गायकी में आकर्षण पैदा होता है एवं श्रोताओं को तबले पर लग्गी–लड़ी बजने का भी इन्तजार रहता है। तन्त्र वाद्यों सितार, सरोद, गिटार(मोहन वीणा), सन्तूर आदि के वादन में तबला की संगत का महत्वपूर्ण स्थान है एवं कार्यक्रम की सफल प्रस्तुति में महत्वपूर्ण योगदान है। शहनाई के पूर्व में नक्कारे की संगत की जाती थी परन्तु अब तबला की संगत भी लोकप्रिय हो रही है। बॉसुरी के साथ तबले की ही संगत उपयोगी समझी जाती है। तबला पर एकल वादन भी लोकप्रिय हुआ जो प्रतिष्ठित संगीत समारोह का अंग बना। आकाशवाणी एवं दूरदर्शन पर भी तबला एकल वादन के कार्यक्रम को शामिल किया गया। तबला के एकल वादन को लोकप्रिय एवं प्रतिष्ठित करने मे मुख्यरुप से उस्ताद अहमद जान थिरकवा, उस्ताद हबीबुद्दीन खां, पं0 सामता प्रसाद, पं0 किशन महाराज, उस्ताद करामतुल्ला खां, उस्ताद अल्लारक्खा खां, उस्ताद लतीफ खां, उस्ताद शेख दाउद आदि का महत्वपूर्ण योगदान है जिससे तबला वाद्य की उपयोगिता बडी। तन्त्रवाद्य के साथ तबला की संगत कार्यक्रम में विशेष आकर्षण पैदा करती है जिससे तबला वादकों को सम्मानजनक प्रतिष्ठा प्राप्त हुई।

फिल्मी संगीत में तबला आवश्यक रुप से ताल वाद्य के रुप में विद्यमान रहता है। झनक–झनक पायल बाजे एवं मेरी सूरत तेरी आखें आदि फिल्मो में पं0 सामता प्रसाद (गुदई महाराज)

को तबला वादन हेतु विशेष रुप से आमंत्रित किया गया था। इसके अतिरिक्त तबले का प्रयोग फिल्मी संगीत मे भरपूर होता रहा है एवं फिल्मी संगीत में तबला वाद्य बहुत उपयोगी सिद्ध हुआ है।

वर्तमान मे लोक संगीत में भी तबला वाद्य का प्रयोग हो रहा है। उत्तर भारत के नृत्य कत्थक में पखावज के साथ तबला की संगत भी की जाती है। अतः तबला उत्तर भारत का सबसे उपयोगी एवं लोकप्रिय अवनद्य वाद्य है।

अभ्यास प्रश्न

1. भरत कालीन मृदंग को किस नाम से जानते थे?
2. त्रिपुष्कर वाद्य के वाद्यों के नाम लिखिए।
3. त्रिपुष्कर वाद्य का कौन सा भाग पखावज के समरुप है?
4. त्रिपुष्कर वाद्य का कौन सा भाग तबला के समरुप है?
5. मृदंग से पखावज शब्द कब प्रचार मे आया?
6. पखावज की वादन शैली कब स्थापित हुई?
7. पखावज की वादन शैली स्थापित करने वाले कौन थे?
8. पखावज का मूल घराना कौन सा है?
9. तबले का अविष्कारक कौन था?
10. तबले की वादन शैली किसने स्थापित की?
11. तबले का मूल घराना कौन सा है?

1.10 सारांश

उत्तर भारतीय संगीत के दो प्रमुख अवनद्य वाद्य पखावज एवं तबला के विषय मे आपने इस इकाई मे अध्ययन किया, जिससे आप पखावज एवं तबला की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता के विषय में जान गए हैं। पखावज और मृदंग एक ही अवनद्य वाद्य के लिए प्रयोग किया जाता है एवं आप इन शब्दों के भेद को एवं मृदंग व पखावज शब्द कैसे संगीत मे आया, पूरी तरह से जान गए हैं। वर्तमान समय मे पखावज की उपयोगिता के विषय में भी आप इस इकाई के अध्ययन से जान गए होंगे। तबले की उत्पति के सम्बन्ध में कई भ्रान्तियां संगीत जगत में व्याप्त थी, उस भ्रम को भी इस इकाई के माध्यम से दूर किया गया है एवं तबले की उत्पति के सम्बन्ध में आप निश्चित परिणाम पर पहुँच चुके होंगे। दोनों वाद्यों की संगीत जगत मे मान्यता एवं उपयोगिता है। तबला वाद्य संगीत क्षेत्र का वर्तमान समय का सबसे लोकप्रिय एवं उपयोगी वाद्य है जो कि आप इस इकाई के अध्ययन के प्च्चात जान गए हैं।

1.11 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. त्रिपुष्कर
2. आंकिक, उध्वर्क एवं अलिंग्यिक
3. आंकिक
4. उध्वर्क एवं आलिंग्यिक
5. मध्यकाल अथवा मुगल काल में
6. अकबर के काल में
7. भगवान दास
8. जावली घराना
9. खुसरो खां द्वितीय
10. सिद्धार खां
11. देहली

1.12 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ला, डा0 योगमाया, *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियां*, हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

2. मिस्त्री, आबान ई0, पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं, स्वर साधना समिति, एनेक्स जम्बुलबाडी, मुम्बई।

3. साभार गूगल।

1.13 सहायक/उपयोगी पाठ्य सामग्री

1. सेन, डॉ0 अरूण कुमार, *उत्तर भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,* मध्यप्रदेष ग्रंथ आकादमी, भोपाल।
2. मिश्र, डा0 लालमणि, *भारतीय संगीत वाद्य',* भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, नई दिल्ली।
3. बसन्त, संगीत विशारद, संगीत कार्यालय, हाथरस।

1.14 निबन्धात्मक प्रष्न

1. मृदंग एवं पखावज शब्द के भेद को समझाइए।
2. पखावज की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।
3. तबले की उत्पति, विकास एवं उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।

इकाई 2 – पखावज के वर्ण, वादन विधि एवं घरानों का अध्ययन; तबले के घरानों एवं उनकी वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन

2.1 प्रस्तावना
2.2 उद्देश्य
2.3 पखावज के वर्ण
2.4 पखावज के वर्ण की वादन विधि
2.5 पखावज के घराने
2.5.1 कुदऊ सिंह घराना
2.5.1.1 कुदऊ सिंह घराने की वादन शैली
2.5.2 नाना पानसे घराना
2.5.2.1 नाना पानसे घराने की वादन शैली
2.6 तबले के घराने
2.6.1 देहली घराना
2.6.1.1 देहली घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.6.2 अजराडा घराना
2.6.2.1 अजराडा घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.6.3 लखनऊ घराना
2.6.3.1 लखनऊ घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.6.4 फर्रुखाबाद घराना
2.6.4.1 फर्रुखाबाद घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.6.5 बनारस घराना
2.6.5.1 बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.6.6 पंजाब घराना
2.6.6.1 पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज
2.7 तबले की वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन
2.8 सारांश
2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

2.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0पी0ए0एम0टी0–601 पाठ्यक्रम की द्वितीय इकाई है। इससे पहले की इकाई में आप पखावज व तबले की उत्पत्ति, विकास एवं इन दोनों अवनद्य वाद्यों की संगीत में उपयोगिता के विषय में जान गए होंगे।

इस इकाई में आप पखावज पर बजने वाले वर्ण एवं इनकी वादन विधि को समझेंगे। पखावज के घरानों का परिचय भी आप इस इकाई से प्राप्त करेंगे। पखावज की भांति तबले के घराने भी स्थापित हुए जिनका अध्ययन आप इस इकाई में करेंगे। प्रत्येक घराने की अपनी वादन शैली है जिसको बाज कहा जाता है। प्रत्येक बाज का अध्ययन भी आप इस इकाई में करेंगे।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप पखावज एवं तबला वाद्य से भली–भांति परिचित हो सकेंगे एवं इनकी घरानों की परम्परा एवं वादन शैली को समझेंगे।

2.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. पखावज पर बोल निकालना जानेंगे।
2. पखावज के घराने के विषय में जानेंगे।
3. तबले के विभिन्न घरानों के विषय में जानेंगे।
4. तबले के विभिन्न घरानों की वादन शैली एवं उनके तुलनात्मक अध्ययन के माध्यम से प्रत्येक बाज की उपयोगिता समझेंगे।
5. अपने लिए वादन शैली का चयन कर पाएंगे।

2.3 पखावज के वर्ण

वर्ण वो तालमय ध्वनि है जो कि पखावज के दाएं एवं बाएं भाग पर आघात से उत्पन्न की जाती है। दाएं एवं बाएं हाथ के विभिन्न प्रकार के आघातों से विभिन्न ध्वनियां उत्पन्न होती हैं एवं जिनके मेल से बोल बनाए जाते हैं, जो कि पखावज वादन शैली का प्रारम्भिक एवं मूल स्रोत है। इन वर्णों को प्राचीन संगीत में पाट वर्ण कहा जाता था। इन वर्णों से जिस प्रकार की ध्वनि सुनाई देती थी उनका नामकरण भाषा के वर्णों से किया गया। पखावज अथवा मृदंग प्राचीन ताल वाद्य हैं एवं प्रारम्भ में केवल पखावज वाद्य हेतु चार वर्ण ता, दित, थूं एवं ना ही प्रचलित थे। इन चार वर्णों की क्रिया को पार्श्वपाणी, अर्धपाणी, दण्डपाणी एवं कर्त्तरी नाम से जाना जाता था। इनकी क्रिया की विधि निम्नवत हैः–

पार्श्वपाणी – दाएं हाथ की कनिष्ठा अंगुली की ओर के आधे भाग द्वारा मृदंग के दाएं मुख पर आघात।

अर्धपाणी – दाएं हाथ की चारों अगुलियों को जोडकर मृदंग के दाएं मुख पर स्याही के आगे की ओर दबा हुआ आघात।

दण्डपाणी – बाएं हाथ की चारों अगुंलियों को जोड कर मृदंग के बाएं मुख पर खुला आघात।

कर्त्तरी – दाएं हाथ की तर्जनी अंगुली के आगे भाग से मृदंग के दाएं मुख पर आघात।

अतः ता, दित, थू एवं ना ध्वनि अथवा वर्ण क्रमशः पार्श्वपाणी, अर्धपाणी, दण्डपाणी एवं कर्त्तरी क्रिया के थे। बाद में किट, त्रि, त्रे, ग, ति, दि आदि अनेक वर्ण जुड गए। इन्हीं वर्णों के समूह से प्राचीन समय में विभिन्न पटाक्षरों का निर्माण कर मृदंग वादन किया गया।

शारंगदेव ने मूल सोलह वर्ण क, ख, ग, घ, ट, ठ, ड, ढ, ण, त, थ, द, घ, न, र एवं ह माने एवं इनके संयोग से दस वर्ण ता, दित, थू, ना, किट, त्रि, त्रे, ग, ति एवं दि मृदंग पर बजाए जाने हेतु निर्धारित किए। संगीत रत्नाकर में शिव के पंच मुख से उत्पन्न पाटवर्णों का उल्लेख है।

प्रत्येक मुख से सात पाट वर्ण का वर्णन सिंह भूपाल ने अपनी टीका में किया है। शिव के पंच मुख सधोजात मुख, वामदेव मुख, अधोरमुख, तत्पुरुष मुख एवं ईशान मुख, प्रत्येक से सात हाथ के पाट वर्ण उल्लेखित हैं। आगे शारंगदेव ने संगीतरत्नाकर में इक्कीस पाटों का वर्णन किया।

भरत एवं शारंगदेव द्वारा उल्लेख किए गए वर्ण एवं पाटाक्षरों का प्रयोग यदपि उसी रुप में, वर्तमान मृदंग अथवा पखावज वादन शैली में नहीं हो रहा है परन्तु फिर भी कुछ सीमा तक इनका प्रयोग सुविधानुसार किया जा रहा है। प्राचीन समय की भाषा संस्कृत थी एवं वर्तमान में संगीत में हिन्दी अथवा खडी बोली का प्रयोग हो रहा है। इस कारण भी भाषा विज्ञान के दृष्टीकोण से वर्ण एवं पाटाक्षरों के उच्चारण में परिवर्तन स्वाभाविक ही है। वर्णों के आधार पर पाटाक्षर अथवा बोल एवं बोल के आधार पर विभिन्न प्रकार की रचनाएं की जाती हैं जिससे वादन शैली निश्चित होती है। वर्ण एवं पाटाक्षर के उच्चारण का आधार उत्पन्न ध्वनि है। अतः जिस वर्ण एवं पाटाक्षर से जैसी ध्वनि उत्पन्न होती है उसको उसी के समरुप उच्चारित किया जाता है।

2.4 पखावज के वर्ण की वादन विधि

पखावज के दाहिने एवं बाएं मुख पर आघात से विभिन्न वर्ण उत्पन्न होते हैं एवं दोनों मुख के संयुक्त वर्णों से पाटाक्षर अथवा बोल की रचना होती है। पखावज के दाएं भाग पर लौह चूर्ण का लेप, जिसको वर्तमान में स्याही कहा जाता है एवं बाएं मुख पर वादन से पूर्व गेहूं के आटे का लेप वांछित ध्वनि के आधार पर लगाया जाता है। सामान्यतयाः स्याही वाले मुख को दाहिने हाथ एवं आटे लगे मुख को बाएं हाथ से बजाते हैं। परन्तु इसके विपरीत स्याही लगे मुख को बाएं हाथ एवं आटा लगे मुख को दाहिने हाथ से भी वादकों को बजाते देखा गया है। प्रसिद्ध पखावज वादक स्वामी पागलदास भी बाएं हाथ से स्याही वाला मुख एवं दाएं हाथ से आटे वाला मुख पर बजाया करते थे। पाटवर्णों की वादन विधि में इस स्याही वाले मुख पर दाहिना हाथ का प्रयोग एवं आटे वाले मुख पर बाएं हाथ का प्रायोगिक वर्णन ही करेंगे। दाएं हाथ से एवं बाएं हाथ से निकलने वाले वर्ण एवं उनकी वादन विधि निम्नवत हैः–

दाएं हाथ वाले वर्ण –

1. ता अथवा ना – इसको स्याही एवं किनार के बीच में तर्जनी अंगुली के आघात से निकालते हैं।
2. तिं – अनामिका को स्याही पर हल्के आघात से निकालते हैं।
3. तिन – ति उपर की भांति एवं न को तर्जनी अंगुली से स्याही पर हल्के आघात से निकाला जाता है। म वर्ण की विधि भी यही है।
4. दीं, थूं – चारों अंगुलियों को जोडकर स्याही पर बीच में खुला आघात किया जाता है।
5. ती, त – चारों अंगुलियों को जोडकर स्याही पर बीच में दबाकर आघात किया जाता है।
6. र, ट – अनामिका एवं मध्य अंगुलियों को जोडकर स्याही पर दबाकर आघात किया जाता है।
7. ल या ला – र एवं ट वर्ण की विधि में केवल स्याही पर दबाने के बजाए खुला आघात किया जाता है।

बाएं हाथ वाले वर्ण –

1. क, के, कि, का, – चारों अंगुलियों को जोडकर आटे के लेप के मध्य दबाकर आघात किया जाता है।
2. ग, घे, घी, गे, घ – चारों अंगुलियों को जोडकर आटे के लेप के मध्य खुला आघात किया जाता है।

दोनों हाथों के वर्ण –

1. धा – दाएं हाथ का वर्ण ता अथवा ना एवं बाएं हाथ का वर्ण ग, थे , थी, गे, घ को संयुक्त रुप से आघात से धा वर्ण निकलता है।
2. धिं – दाएं हाथ के ति वर्ण के साथ बाएं हाथ का ग, थे आदि वर्ण के संयुक्त आघात से धिं वर्ण निकलता है।
3. धिं – दाएं हाथ के तिं वर्ण के साथ बाएं हाथ का ग, धे आदि वर्ण के संयुक्त आघात से धिं वर्ण निकलता है।
4. धित – दाएं हाथ के वर्ण ती अथवा त के साथ बाएं हाथ के ग, धे आदि के संयक्तु आघात से धित वर्ण निकलता है ।

उपरोक्त दाएं एवं बाएं हाथ के वर्णों के संयोग से विभिन्न बोल सृजित होते हैं, जिनसे विभिन्न प्रकार की ध्वनियुक्त बोलों का निर्माण होता है जो कि पखावज वादन में आवश्यकता एवं सुविधानुसार प्रयोग किए जाते हैं, जो कि वादन को प्रभावशाली बनाते हैं। इन बोलों की भिन्न रचनाओं के आधार पर भिन्न शैलियों का निर्माण हुआ जो बाद में घरानो के नाम से प्रतिष्ठित हुई, जिनकी चर्चा आगे घरानो के सन्दर्भ में की जाएगी।

यद्यपि वर्ण को निकालने की विधि निश्चित ही है परन्तु फिर भी बोल की रचना के अनुसार कलाकार द्वारा वर्ण को निकालने की विधि में परिवर्तन कर लिया जाता है जो कि वर्ण एवं बोल के ध्वनि विज्ञान पर आधारित होता है ।

2.5 पखावज के घराने

भरत एवं शारंगदेव ने मृदंग पर पाटवर्णों के निकालने की विधि बताई परन्तु मृदंग की समग्र शैली का वर्णन कहीं भी प्राप्त नहीं होता है। मृदंग एवं पखावज की वादन शैली विशेष कर मध्य युग, अकबर के काल में स्थापित हुई। अकबर के दरबार में ध्रुपद शैली का गायन एवं वादन प्रचलित था जिसकी संगत पखावज वाद्य के साथ की जाती थी। बादशाह अकबर के काल में भगवान दास पखावजी थे। भगवान दास जी के वादन से प्रसन्न होकर अकबर बादशाह ने उनको जावली गॉव उपहार में दिया था। भगवान दास से पखावज में घरानों की परम्परा आरम्भ हुई। भगवान दास जी के दो पुत्र (नाम अज्ञात) थे। अकबर बादशाह ने प्रसन्न होकर इनको सिंह की उपाधि दी थी उसके बाद से इनके वंश में प्रत्येक कलाकार के साथ सिंह लगाने की प्रथा चली। पखावज का मूल घराना जावली घराना माना जाता है। भगवान दास के वंशजो एवं शिष्य ने पखावज की वादन शैली को समृद्ध एवं विकसित किया जिससे वर्तमान के पखावज के घराने अस्तित्व में आए।

भारतीय संगीत में पखावज के घरानों एवं वादकों का परिचय हमें अठारवीं शताब्दी के बाद ही मिलता है। यद्यपि इससे पहले भी अनेक विद्वान मृदंग वादक थे परन्तु इनकी वादन शैली का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता है। भगवान दास पखावजी द्वारा तानसेन की ध्रुपद गायन के साथ संगत करने के प्रमाण मिलते हैं। तानसेन एवं बैजू बावरा ध्रुपद ही गाया करते थे। जगपत पखावजी भी तानसेन के समकालीन थे। भगवान दास के वंशज एवं शिष्य कृपाल राम एवं खुशहाल खॉ थे। ये दोनों ही औरंगजेब के समय के थे। कृपालराय को औरंगजेब ने मृदंग राय की उपाधि से एवं खुशहाल खॉ को "गुण समन्दर" की उपाधि से सम्मानित किया था। कृपाल राय के शिष्यों में पहाड सिंह जोधपुर, घासी राम एवं भवानी दीन अथवा भवानी सिंह थे। खुशहाल खॉ की कोई शिष्य परम्परा प्राप्त नहीं होती है।

पहाड सिंह जोधपुर के दरबारी कलाकार थे एवं इनके साथ इनके पुत्र जोहार सिंह भी जोधपुर राजदरबार में रहते थे। जोहार सिंह से रुपराम ने पखावज की शिक्षा ग्रहण की एवं इस परम्परा को रुपराम ने नाथ द्वार के श्री नाथ मन्दिर में विकसित की एवं प्रचारित किया, जो कि

बाद में नाथ द्वार घराने के नाम से जाना गया। भवानी दीन के प्रमुख शिष्यों में ताज खॉ डेरेदार, हददू खॉ लाहौर वाले, कादिर बख्श (प्रथम), कुदऊ सिंह एवं बाबू जोध सिंह थे। ताज खॉ डेरेदार, हददू खॉ एवं कादिर बख्श (प्रथम) ने पखावज के पंजाब घराने की नींव डाली। कुदऊ सिंह से कुदऊ सिंह घराना प्रचलित हुआ एवं बाबू जोध सिंह के शिष्य नाना पानसे को अपनी एक मौलिक शैली के साथ नाना पानसे घराने से जाना गया।

भगवान दास
(अकबर युग)

पुत्र(नाम अज्ञात) | पुत्र(नाम अज्ञात)

कृपाल राय मृदंगराय (औरंगजेब युग) | खुशहाल खॉ गुण समन्दर (औरंगजेब युग)

पहाड सिंह (जोधपुर) | घासी राम (मोहम्द शाह रंगीले युग) | भवानी दीन

जोहार सिंह (पुत्र) (जोधपुर)

भवानी दीन

ताज खॉ डेरेदार | हददू खॉ | कादिर बख्श (प्रथम) | कुदऊ सिंह | बाबू जोध सिंह

पंजाब घराना | कुदऊ सिंह घराना | नानापानसे घराना

बृज की भूमि कृष्ण की लीलाओं से सराबोर रही है। कृष्ण की लीलाओं का वर्णन अष्ट छाप कवि सूरदास, दरमानन्द दास एवं गोविन्द स्वामी ने अपनी भक्ति रस की रचनाओं में किया है। इनको संगीतबद्ध कर हवेली संगीत, भजन–कीर्तन शैली एवं ध्रुपद–धमार गायन शैली में गाने की प्रथा आज भी विद्यमान है। इन सभी संगीत विधाओं के साथ पखावज की संगत की जाती थी। अतः बृज में पखावज की परम्परा रही है। किशन एवं जराधर दो भाई पखावज के विद्वान कलाकार हुए हैं। जराधर की पखावज की परम्परा बृज के क्षेत्र में विकसित एवं प्रचलित हुई। बृज ही वह क्षेत्र है जहॉ स्वामी हरिदास ने संगीत साधना की। बैजू बावरा एवं तानसेन की संगीत स्थली भी विशेषकर यहीं रही। पं0 प्रेम बल्लभ जो कि आकाशवाणी देहली में तबला वादक के रुप में नियुक्त रहे वे पखावज की इसी परम्परा से सम्बन्धित थे। प्रेम बल्लभ ने मुख्य रुप से तबला वादक के रुप में प्रतिष्ठा प्राप्त की। बृज की परम्परा के कलाकारों ने पखावज की अपेक्षा तबले में ही अधिक रुचि दिखाई। अवध के क्षेत्र में पखावज की परम्परा कुदऊ सिंह के दो शिष्य पं मनमोहन उपाध्याय एवं बाबा राम कुमार दास ने आगे बढाई। बाबा राम कुमार दास की शिष्य परम्परा में राममोहिनी शरण

एवं इनकी शिष्य परम्परा के स्वामी राम शंकर दास जो पागल दास के नाम से प्रख्यात हुए अवध क्षेत्र में पखावज को लोकप्रिय बनाया एवं अनेक शिष्य तैयार कर पखावज का प्रचार किया। यह अवध की परम्परा भी कुदऊ सिंह घराने की एक शाखा के रुप में प्रतिष्ठित है।

केवल किशन बंगाल में काफी समय तक रहे अतः बंगाल में केवल किशन ने पखावज की वादन शैली को स्थापित किया एवं शिष्यों के माध्यम से इसे प्रचारित भी किया। केवल किशन के तीन शिष्यों – निभाई चक्रवर्ती, रामचन्द्र चक्रवर्ती एवं निताई चक्रवर्ती द्वारा बंगाल में पखावज को लोकप्रिय बनाने में महत्वपूर्ण योगदान दिया।

पखावज की परम्परा सम्पूर्ण भारत में प्रचलित हुई जो कि मुख्य रुप से कुदऊ सिंह एवं नाना पानसे से ही चली। पंजाब में पखावज की परम्परा कादिर बख्श (प्रथम) से आरम्भ हुई जो बाद में तबले के घराने में परिवर्तित हो गई। अतः पखावज के दो ही मुख्य घराने कहे जा सकते है – 1. कुदऊ सिंह घराना 2. नाना पानसे घराना। इन घरानो के विषय में आगे अध्ययन करेंगे।

2.5.1 कुदऊ सिंह घराना – अकबर युगीन भगवान दास की वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा से ही कुदऊ सिंह घराने का सम्बन्ध है। कुदऊ सिंह औरंगजेब युग के कृपाल राय मृदंग राय के शिष्य भवानी दीन अथवा भवानी सिंह के शिष्य थे। मथुरा क्षेत्र में भवानी दीन को भवानी दास के नाम से जाना जाता था एवं कुदऊ सिंह को केवल किशन से भी मृदंग सीखने का सौभाग्य प्राप्त हुआ था। कुदऊ सिंह के सन्दर्भ में यह निश्चित है कि वे भवानी दीन अथवा भवानी सिंह अथवा भवानी दास के शिष्य थे। अपने गुरु से प्राप्त विद्या का कुदऊ सिंह ने विकास किया जिस कारण पखावज का घराना कुदऊ सिंह के नाम से प्रख्यात हुआ। कुदऊ सिंह को पखावज का युग पुरुष माना जाता है। कुदऊ सिंह ने पखावज की एक मौलिक शैली विकसित की एवं बाद में इनके शिष्यों ने इस शैली को प्रतिष्ठित किया जो आज कुदऊ सिंह घराने के नाम से प्रख्यात है।

कुदऊ सिंह का जन्म उत्तर प्रदेष के बांदा जनपद में हुआ था। कुदऊ सिंह ब्राहमण थे, इनके पिता पं0 सुखदेव प्रसाद स्वयं मृदंगाचार्य थे, अतः मृदंग की प्रारम्भिक शिक्षा इनको अपने पिता से प्राप्त हुई। पिता की अल्प आयु में मृत्यु के कारण मृदंग सीखने भवानी सिंह के पास पहुंचे एवं उनका शिष्यत्व ग्रहण कर लिया। कुदऊ सिंह का पूर्व का नाम कुदऊ प्रसाद तिवारी था परन्तु बाद में भवानी सिंह की परम्परा में सिंह उपाधि लगाने के कारण कुदऊ प्रसाद, कुदऊ सिंह के नाम से ही प्रख्यात हुए।

कुदऊ सिंह की साधना स्थली मुख्य रुप से दतिया ही रही। आप दतिया नरेश के कला रत्नों में से एक थे। यद्यपि कुदऊ सिंह ने भारत वर्ष की कई रियासतों में पखावज वादन कर ख्याति अर्जित की थी परन्तु वे दतिया नरेष के स्नेह के कारण अन्तिम समय तक दतिया में रहे। कुदऊ सिंह पखावज के पर्याय बन गए थे। सन 1847 में अवध के दरबार में कुदऊ सिंह का मृदंग वादन हुआ था उस समय लखनऊ के नवाब वाजिद अली षाह ने मृदंग वादन से प्रसन्न होकर कुदऊ सिंह को कुंवर दास की उपाधि से सम्मानित किया था। कुदऊ सिंह ने यही पर जोध सिंह पखावजी को परास्त कर एक हजार मुद्रा का पुरस्कार जीता था। इसी घराना का वर्णन दतिया के दरबार में भी किया जाता है। कुदऊ सिंह ने रीवा नरेश के दरबारी पखावज कलाकार मोहम्मद षाह को पराजित किया था। रीवा नरेश ने विशेष परन के लिए सवा लाख रुपये का इनाम कुदऊ सिंह को दिया था बाद में यह विशेष परन सवा लाखी परन के नाम से प्रसिद्ध हुई थी। कुदऊ सिंह बांदा के नवाब के पास भी कुछ समय तक रहे। कुदऊ सिंह ने अपनी पुत्री के विवाह में दहेज में अपने दामाद काशी प्रसाद को चौदह सौ परनें दी थी, जिन परनों को उन्होनें स्वयं फिर कभी नहीं बजाया। इनके पुत्र शम्भू प्रसाद तिवारी ने कुदऊ सिंह घराने की परम्परा को आगे बढाया। शम्भू प्रसाद तिवारी के दामाद रामदास शर्मा ने भी इस घराने की परम्परा को आगे बढाया।

कुदऊ सिंह झांसी के राजा गंगाधर राव के दरबार में भी रहे। महाराज की मृत्यु के पश्चात झांसी की रानी लक्ष्मी बाई ने भी उन्हें उचित सम्मान दिया। 1857 में अग्रेजों ने झांसी पर अधिकार प्राप्त किया एवं कुदऊ सिंह को भी बन्दी बना लिया। बाद में दतिया के नरेश ने उन्हें अग्रेजों के

कैद से मुक्त कराया। परन्तु उन्होनें बाद में भी दाहिने पैर में जंजीर बांधे रखी जिसके सम्बन्ध में कुदऊ सिंह कहते थे कि मैं दतिया नरेश का आजीवन कैदी हूँ।

कुदऊ सिंह के भाई राम प्रसाद के पुत्र गया प्रसाद, गया प्रसाद के पुत्र अयोध्या प्रसाद ने कुदऊ सिंह के घराने को रामपुर दरबार में प्रतिष्ठा दिलाई। इनकी शिष्य परम्परा में गोपाल दास (देहली), आचार्य बृहस्पति, रमाकान्त पाठक (लखनऊ), तोता राम शर्मा मुख्य हैं। अयोध्या प्रसाद के चार पुत्र शीतल प्रसाद, नारायण प्रसाद, कुन्दन प्रसाद व रामजी लाल शर्मा हुए। शीतल प्रसाद एवं रामजी लाल शर्मा ने इस घराने की परम्परा को आगे बढाया।

बाबा राम कुमार दास (अयोध्या) भी कुदऊ सिंह घराने से सम्बन्धित थे। इन्होनें कुदऊ सिंह परम्परा को अवध क्षेत्र में प्रचारित एवं विकसित किया। इनके प्रमुख शिष्य राम मोहिनी शरण (अयोध्या) एवं बाबा ठाकुदास (अयोध्या) हुए जो अपने समय के प्रसिद्ध मृदंगाचार्य थे। राम मोहिनी शरण जी के प्रमुख शिष्यों में भगवान दास (अयोध्या) का नाम लिया जाता है। स्वामी राम शंकर दास (पागल दास) ने भगवान दास एवं बाबा ठाकुर दास दोनों से ही मृदंग की शिक्षा ग्रहण की थी। स्वामी पागल दास की शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है। पागलदास ने पखावज की भक्ति एवं साहित्यिक रचना की एवं इस घराने को समृद्ध किया। स्वामी राम दास एवं बाबा ठाकुर दास गुरु भ्राता थे। राजा छत्रपति सिंह स्वामी राम दास के शिष्य थे। कुदऊ सिंह घराने के ही चिरंजी लाल (मथुरा) के दत्तक पुत्र गोलाराम एवं इनके पुत्र प्रेम बल्लभ ने भी पखावज वादन में प्रसिद्धि प्राप्त की। प्रेम बल्लभ ने तो बाद में तबला वादन को मुख्य बनाया एवं तबला वादन की शिक्षा उस्ताद अहमद जान थिरकवा से प्राप्त की ।

कुदऊ सिंह घराना

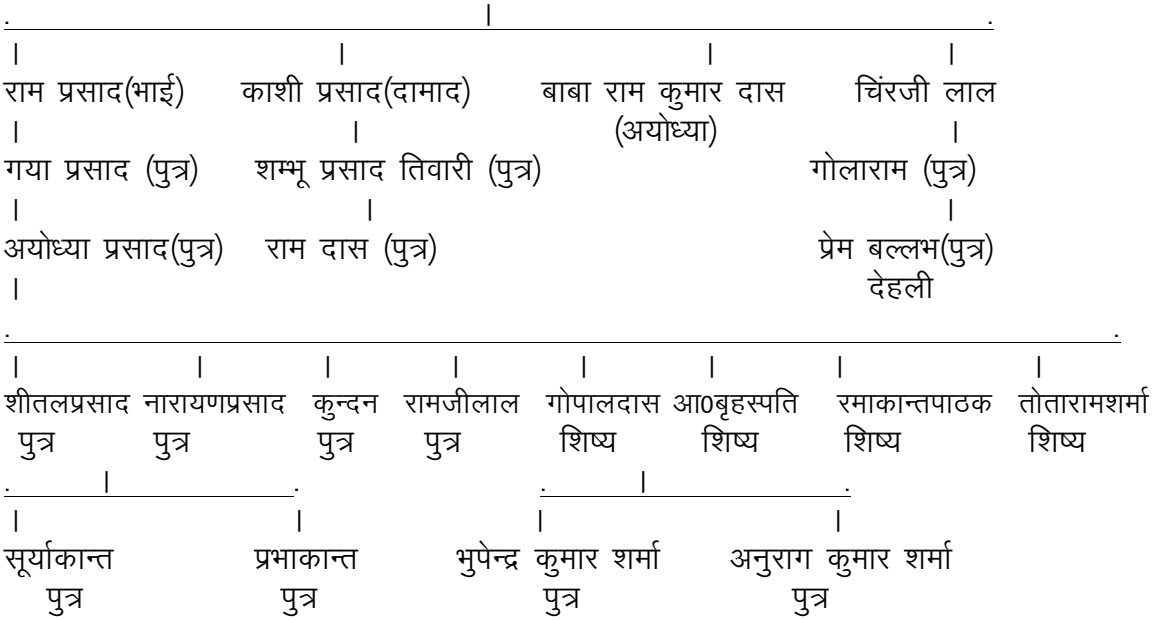

बाबा राम कुमार दास (अयोध्या)

राम मोहिनी शरण (अयोध्या)	बाबा ठाकुर दास (अयोध्या)
भगवान दास (अयोध्या)	स्वामी रामशंकर दास (पागलदास–अयोध्या)
स्वामी रामशंकर दास (पागलदास–अयोध्या)	

स्वामी पागल दास के प्रमुख शिष्य – राम किशोर दास, बसन्त श्री सागर, मंगल दास, राम प्रसाद मिश्रा, कौसल दास, सतीश दास, अभिमन्यु मुल्ले, शत्रुघन शरण, राज कुमार झा, रामहल दास, संजय पन्त आंगले, लक्ष्मण प्रसाद, मुरली महाराज, मन्ना प्रसाद, जमुना दास, राज खुशी राम, रुप किशोर दास, सन्तोष दास, विजय राम दास, अजय राम दास, गुलाम अली, वाहिद अली, जान डेविड, टोड नार्टन, माइकल फिडलैंड, रिर्चड हार्न, लीन रिचन।

2.5.1.1 कुदऊ सिंह घराने की वादन शैली – गुरु से प्राप्त विद्या को कुदऊ सिंह ने अपनी व्यक्तिगत मौलिक शैली प्रदान कर शिष्यों में प्रचारित की, जिससे कुदऊ सिंह घराना अपनी विशिष्ट शैली के साथ स्थापित हुआ। इनकी वादन शैली राज दरबार के वातावरण में विकसित हुई जिसमें संगीतज्ञों की स्पर्धाएं आयोजित की जाती थी है एवं दूसरे को पराजित करने की भी होड लगी रहती थी। अतः उस समय की शैली में ओज होना स्वाभाविक ही था। कुदऊ सिंह की शैली ओजपूर्ण थी। इस घराने की शैली में कठिन बोलों का प्रयोग होता था जैसे धडाम धिंलाग, कृधित, थूंगा, घुमकिट, तडन्न आदि बोलों की स्पष्टता एवं बोलों के साथ ध्वनि प्रयोग इस घराने की वादन शैली की विशेषता है। कोई भी रचना पांच आवृति से बीस आवृति तक, कुदऊ सिंह घराने की विशेषता थी। कुदऊ सिंह की गज परन जिसको बजा कर कुदऊ सिंह ने मदमस्त हाथी को वश में किया था एक किवदन्ती के रुप में प्रसिद्ध है। एक अन्य किवदन्ति के अनुसार जल–पंच देवी परन बजाने से पूजा हेतु रखा गया नारियल स्वयं टूट जाया करता था। इसके अतिरिक्त इनकी स्वनिर्मित परनें जैसे बाज बहेरी परन, शिव तान्डव परन, मन मोर परन, बिजली परन, धडा तोप परन, दुर्गा परन, गणेश परन आदि प्रसिद्ध हुई। कुदऊ सिंह मॉ काली के भक्त थे अतः इनकी रचनाओं में आध्यात्मिकता एवं धार्मिक भाव परिलक्षित होते हैं। स्वामी पागलदास ने भी इसी परम्परा का निर्वाह करते हुए साहित्य से समृद्ध लय एवं बोलों के सुन्दर सामन्जस्य से अनेकों रचनाए की।

2.5.2 नाना पानसे घराना – नाना पानसे कुदऊ सिंह के समकालीन बाबू जोध सिंह के शिष्य थे। गुरु मुख से प्राप्त विद्या को आधार बना कर एक नवीन शैली विकसित की जो नाना पानसे घराने के नाम से स्थापित हुई। बाबू जोध सिंह भवानी दीन के शिष्य एवं कुदऊ सिंह के गुरु भ्राता थे। नाना पानसे का जन्म महाराष्ट्र में बावधन नामक गॉव में हुआ था। पखावज की शिक्षा आपने अपने पिता से आरम्भ की थी। मन्दिरों में भजन एवं कीर्तन के साथ नाना पानसे पखावज की संगत किया करते थे। अपने गुरु एवं पिता से आपको धार्मिक सस्कार प्राप्त हुए जो कि आपकी वादन शैली में पूर्ण रुप से झलकता है। बाबू जोध सिंह ने नाना पानसे को बारह वर्षों तक शिक्षा दी एवं इसके पश्चात प्रयाग के माधव स्वामी के पास भेज दिया जो कि उच्च कोटि के पखावज के आचार्य एवं सन्त थे। माधव स्वामी ने नाना पानसे को पखावज की समस्त शिक्षा प्रदान की एवं अपना मृदंग भी नाना पानसे को आर्शीवाद स्वरुप दिया। माधव स्वामी की मृत्यु के पश्चात नाना पानसे ने प्रयाग छोड दिया एवं इन्दौर के राज दरबार में नियुक्त हो गए। पानसे के गुरु बाबू जोध सिंह भी सन्त प्रकृति के थे एवं अपनी साधना एकान्त में करते थे। लोक प्रसिद्धि से बाबू जोध सिंह बहुत दूर रहे एवं वैराग्यमय जीवन व्यतीत करते हुए अपनी साधना को देवी सरस्वती को ही अर्पित किया करते

थे। नाना पानसे पर इनके व्यक्तित्व का बडा प्रभाव रहा। नाना पानसे ने अपनी शिक्षा दो तीर्थ स्थल काशी एवं प्रयाग में पूरी की एवं इन्दौर दरबार में इसको विकसित कर नवीन शैली का सृजन किया ।

नाना पानसे का नाम नारायण थोरपे था। नाना पानसे अपने गांव के मन्दिर में पानसे नामक कीर्तनकार के साथ पखावज की संगत किया करते थे। इनकी सगंत इतनी मधुर एवं आकर्षक होती थी कि भक्तजन कीर्तन के साथ पखावज का भी अत्यन्त आनन्द लिया करते थे। तभी से नारायण थोपरे से नाना पानसे नाम से प्रख्यात हुए। नाना पानसे घराने का प्रचार–प्रसार महाराष्ट्र एवं दक्षिण क्षेत्र में जो भी हुआ उसका श्रेय नाना पानसे एवं इनके शिष्यों को ही है। नाना पानसे के प्रमुख शिष्यों में इनके पुत्र बलवन्त राय पानसे एवं शिष्य सखा राम पन्त आंग्ले ने इन्दौर एवं इसके आस–पास के क्षेत्र में अनेक शिष्य तैयार किए। सखा राम पन्त आंग्ले के पुत्र अबा दास पन्त आंग्ले एवं इनके पुत्र काली दास पन्त आंग्ले के पुत्र राजेन्द्र आंग्ले एवं संजय आंग्ले एवं पुत्री चित्रांगना आंग्ले वर्तमान में पखावज वादन में प्रसिद्धि प्राप्त कर रहे हैं। हैदराबाद (दक्षिण) में वामनराव चांद वडकर ने नाना पानसे घराने की शैली में शिष्य तैयार किए। नाथ दुआ दिक्षित ने अहमद नगर में इस घराने को प्रचारित किया। नाना पानसे के पौत्र शंकर भैया पानसे ने पुणे एवं शिष्य शंकर राव अलकुटकर ने मुम्बई में रहकर इस घराने का प्रसार किया। इस घराने के पं0 सखाराम मृदंगाचार्य कई वर्षों तक मैरिस कालेज आफ म्यूजिक वर्तमान में भातखण्डे संगीत संस्थान लखनऊ में अपनी सेवाएं दी एवं अनेक शिष्य तैयार किए। शंकर राव अलकुटकर के शिष्य गोविन्द राव कोली ने मुम्बई में पखावज का प्रचार किया। इनके प्रमुख शिष्यों में अर्जुन सेजवाल एवं इनके पुत्र प्रकाश सेजवाल इस परम्परा को आगे बढा रहे हैं। वर्तमान में पखावज वादन में कुदऊ सिंह घराने की परम्परा एवं नाना पानसे घराने की परम्परा ही चल रही है। इस घराने के प्रमुख शिष्यों की परम्परा आप निम्न तालिका से समझेंगेः–

बाबू जोध सिंह

।

नाना पानसे घराना

बलवन्त राव पानसे (पुत्र)	वामन राव इन्दौर चादंवडकर	सखाराम पन्त आंग्ले इन्दौर	नाथ बुआ दिक्षित अहमदनगर	शंकर भैया पानसे पौत्र

।

शंकर राव अलकुटकर

बलवन्त राव पानसे

।

मुन्नालाल पंवार

।

चुन्नी लाल पंवार (पुत्र)

।

लक्ष्मी नारायण पंवार (पुत्र)

शंकर राव अलकुटकर

नारायण राव कोली(मुम्बई)	माधवराव अलकुटकर(पुत्र)	सखाराम मृदंगचार्य
अर्जुन सेजवाल प्रकाश सेजवाल पुत्र	सखा राम पन्त आंग्ले अंबादास पन्त आंग्ले पुत्र	

काली दास पन्त आंग्ले

राजेन्द्र आंग्ले	संजय आंग्ले	चित्रागना आंग्ले
पुत्र	पुत्र	पुत्री

2.5.2.1 नाना पानसे घराने की वादन शैली – नाना पानसे धार्मिक एवं सन्त प्रकृति के थे जो कि उनको अपने पिता एवं गुरुओं से विरासत में प्राप्त हुई थी। यही प्रकृति उनके वादन शैली में स्पष्ट दिखाई देती थी। नाना पानसे हृदय से विनम्र व्यक्तित्व के थे एवं कभी भी किसी कलाकार का उन्होनें अपमान नहीं किया। यही कारण है कि नाना पानसे के विषय में किसी प्रतियोगिता का वर्णन प्राप्त नहीं होता है जब कि राज दरबार में संगीत की प्रतियोगिता होना आम बात थी। इन्होंने अपनी वादन शैली को कुदऊ सिंह घराने की शैली की अपेक्षा सरल बनाया एवं कुदऊ सिंह घराने में प्रयोग होने वाले कठिन बोलों के स्थान पर सरल एवं धारा प्रवाह में बजने वाले बोलों का प्रयोग किया जिससे इनकी वादन शैली अधिक लोकप्रिय हुई एवं कुदऊ सिंह घराने की उपस्थिति में नाना पानसे घराना स्थापित हुआ।

नाना पानसे की वादन शैली सरल एवं मुलायम थी। कुदऊ सिंह घराने की वादन शैली की भांति लम्बी–लम्बी परने इस घराने में नहीं थी। इनकी रचनाओं में धुमकिट, किटतक, तिरकिट, तक तक, त्रदीगिन, घिरघिर किटतक, धिर किट, आदि बोलों का प्रयोग विशेष रुप से पाया जाता है एवं रचनाएं इस प्रकार की होती थी जिससे वे आसानी से तेज लय एवं धारा प्रवाह के साथ बज सके। इस शैली के रेले भी सरल होते थे एवं तेज लय में लडी सी बंध जाती थी। इनकी रचनाओं में तिस्त्र जाति का प्रयोग काफी अधिक मात्रा में पाया जाता है। इनकी रचनाओं को तबले पर भी तबले के कलाकारों द्वारा प्रयोग किया जाता है। इनकी शैली मुलायम एवं मधुर होने के कारण गायन एवं वादन की संगत हेतु उपयुक्त मानी जाती है। नाना पानसे ने तबले के लिए भी रचनाएं की एवं हैदराबाद के पं0 वामन राव चांदवडकर को उन्होनें पखावज के साथ साथ तबले की भी शिक्षा दी, जिसको उन्होनें हैदराबाद में प्रचलित किया। हैदराबाद के ही उस्ताद शेख दाउद, नाना पानसे की रचनाओं को बडी कुशलता से तबला वादन में प्रयोग करते थे जिसको उन्होनें अपने शिष्यों को भी प्रदान किया। नाना पानसे की रचनाओं का उदाहरण देखिए –

कडधेत किटधातिर किटतकधा किटतकदीं किडनक तिरकिट ।

x

तकताकिटतक दी–कत । धा– किडनक तिरकिटतकता किटतकदी– ।

2 0

कत धा– किडनकतिर किट तकताकि टतक दी–कत ।

3

2.6 तबले के घराने

तबला वाद्य, पखावज वाद्य के बाद अस्तित्व में आया। भवानी दास अथवा भवानी सिंह अथवा भवानीदीन के शिष्य पंजाब के ताज खॉ डेरेदार कादिर बख्श(प्रथम) एवं हददू खॉ ने पखावज के पंजाब घराने की नींव डाली एवं कादिर बख्श के पौत्र मियां फकीर बख्श ने पंजाब के लोक वाद्य दुक्कड की वादन शैली के साथ मिलाकर तबले के पंजाब घराने की स्थापना की। अतः पंजाब में तबला वादन शैली को मुख्य आधार पखावज वादन शैली एवं दुक्कड की वादन शैली है। सिद्धार खॉ जिनको तबला वादन शैली का जन्मदाता माना जाता है वे भावानी दास के समकालीन थे। अतः तबला की वादन शैली पंजाब से पहले सिद्धार खॉ द्वारा स्थापित की गई थी। यद्यपि पंजाब के तबले की वादन शैली पर सिद्धार खॉ की वादन शैली का प्रभाव नहीं देखा जाता है। उस्ताद सिद्धार के वंशज एवं शिष्यों के द्वारा तबला वादन शैली में विकास किया गया जिससे वर्तमान में प्रचलित तबले के घराने दिल्ली, अजराडा, लखनऊ, फर्रुखाबाद एवं बनारस घराने अस्तित्व में आए। पंजाब घराने का इनसे स्वतंत्र अस्तित्व है। निम्न तालिका से आप भिन्न–भिन्न घराने की स्थापना के विषय में समझेंगे।

सिद्धार खॉ

बुगरा खॉ (पुत्र) | घसीट खॉ (पुत्र) | नाम अज्ञात

सिताब खॉ (पुत्र) | गुलाब खॉ (पुत्र)

देहली घराना

सिताब खॉ

कल्लू खॉ (षिष्य) | मीरु खॉ (शिष्य)

अजराडा घराना

सिद्धार खॉ के पुत्र (नाम अज्ञात)

मक्कू खॉ(पुत्र) | मोदू खॉ (पुत्र) | बख्शू खॉ (पुत्र)

लखनऊ घराना

लखनऊ घराना

मोदू खॉ	**बख्शू खॉ**
।	**।**
पं राम सहाय	हाजी विलायत अली (दामाद)
।	**।**
बनारस घराना	**फर्रूखाबाद घराना**

मियां फकीर बख्श, कादिर बख्श (प्रथम) के पौत्र

।

पंजाब घराना

इस प्रकार सिताब खॉ के पुत्र बुगरा खॉ एवं गुलाब खॉ से देहली घराना, सिताब खॉ के दो षिष्य मीरु खॉ एवं कल्लू खॉ से अजराडा घराना, मोदू खॉ एवं बख्शू खॉ से लखनऊ घराना, बख्शू खॉ के दामाद हाजी विलायत अली से फर्रूखाबाद घराना, मोदू खॉ के शिष्य पं0 राम सहाय से बनारस घराने की स्थापना हुई। मियां फकीर बख्श ने पंजाब घराने की नींव डाली।

2.6.1 देहली घराना – तबले के देहली घराने की नींव सिद्धार खॉ ने डाली। सिद्धार खॉ, पखावजी थे। इन्होनें पखावज के बोलों में परिवर्तन कर उनको तबले पर बजाने योग्य बनाया एवं तबले की शैली को जन्म दिया। सिद्धार खॉ के वंश परम्परा और शिष्य परम्परा द्वारा तबले के अन्य घरानों की नींव डाली गई। केवल पंजाब घराना स्वतंत्र रुप से विकसित हुआ। देहली घराने की वंश परम्परा सिद्धार खॉ के बडे पुत्र बुगरा खॉ एवं छोटे भाई चाद खॉ द्वारा आगे बडी। घसीट खॉ जी जो सिद्धार खॉ के पुत्र थे उनकी वंश परम्परा की जानकारी प्राप्त नहीं होती है। इनके तीसरे पुत्र जिनका नाम प्राप्त नहीं होता है के दो पुत्र बख्शू खॉ एवं मोदू खॉ द्वारा लखनऊ घराने की स्थापना हुई। बुगरा खॉ के दो पुत्र सिताब खॉ एवं गुलाब खॉ थे। सिताब खॉ के पुत्र नजीर अली, नाती बडे काले खॉ, इनके पुत्र बोली बख्श के द्वारा देहली घराने को सृमद्ध किया गया। बोली बख्श के पुत्र नत्थू खॉ एवं भतीजे अल्लादिया खॉ ने देहली घराने की परम्परा को आगे बढाया। बहादुर शाह जफर के पुत्र फिरोज शाह एवं ललीपाने के मुनीर खॉ भी बोली बख्श के शिष्य थे। फिरोज शाह के प्रसिद्ध शिष्य जहांगीर खॉ इंदौर ने लखनऊ घराने के विकास में एवं मुनीर खॉ ने फर्रूखाबाद घराने के विकास में महत्वपूर्ण योगदान दिया। अल्लादिया के दो पुत्र छोटू खॉ एवं मोहम्मद खॉ हैदराबाद में आकर बस गए एवं इनके द्वारा हैदराबाद में देहली घराने की वादन शैली का प्रचार एवं प्रसार किया गया। शेख दाउद ने इस परम्परा को स्वयं एवं शिष्यों के माध्यम से प्रसारित किया।

बोली बख्श के पुत्र नत्थु खॉ ने तबला वादन में बहुत ख्याति अर्जित की। इनकी शिष्य परम्परा में प्रमुख है मोहम्मद अहमद (बम्बई), हिरेन्द्र किषोर राय चौधरी (कलकत्ता), शमसुद्दीन खॉ, इबीबूद्दीन खॉ। बुगरा के दुसरे पुत्र गुलाब खॉ के द्वारा इस घराने की एक अन्य परम्परा चली। गुलाब खॉ के पुत्र मुहम्मद खॉ, इनके पुत्र छोटे काले खॉ, इनके शिष्य गामी खॉ, इनके पुत्र इनाम अली एवं इनके षिष्य लतीफ अहमद ने देहली घराने के कलाकार के रुप में प्रतिष्ठा पाई। वर्तमान में इनाम अली के पुत्र गुलाम हैदर इस परम्परा के संवाहक है। सिद्धार खॉ के छोटे भाई चांद खॉ द्वारा भी देहली घराने की परम्परा चली जिससे इनके पुत्र लल्ली मसीत खॉ एवं इनके पुत्र लंगडे हुसैन ने योगदान दिया। लंगडे हुसैन के तीन पुत्र घसीट खॉ, गुलाम अहमद एवं नन्हे खॉ थे। इस परम्परा को मुख्य रुप से घसीट खॉ एवं नन्हें खॉ ने आगे बढाया। घसीट खॉ की शिष्य परम्परा फजली खॉ, काले खॉ, छम्मा खॉ एवं इनके शिष्य शफात अहमद हुए। नन्हें खॉ की शिष्य परम्परा में अजीम बख्श जावरे वाले एवं जुगना खॉ हुए। अजीम बख्श द्वारा अपने शिष्यों द्वारा तबले का

प्रचार किया। इनके शिष्यों में इनके पुत्र निजामुद्दीन, दामाद इश्तियाक अहमद, हिदायत खॉ (जयपुर), फैमाज खॉ (देहली) एवं ज्ञान प्रकाश घोष हुए। ज्ञान प्रकाश घोष ने कलाकारों में तबले का प्रसार किया। इनके योग्य एवं प्रमुख शिष्य कन्हाई दत्त एवं निखिल घोष ने तबला वादन के क्षेत्र में नाम कमाया। वर्तमान में निखिल घोष के पुत्र नयन घोष तबले के सफल कलाकार हैं। देहली घराने की शिष्य परम्परा विशाल है। प्रारम्भ में सभी के द्वारा देहली घराने से तबले की शिक्षा प्राप्त की गई एवं बाद में अन्य घरानो से शिक्षा प्राप्त कर तबला वादन शैली को सृमद्ध किया जो कि आप निम्न तालिका से भली–भॉति समझेंगे।

देहली घराना

सिद्धार खॉ

बुगरा खॉ (पुत्र) घसीट खॉ (पुत्र) पुत्र (नाम अज्ञात) चांद खॉ(छोटे भाई)

सिताब खॉ (पुत्र) गुलाब खॉ (पुत्र)

नजीर अली(पुत्र) मुहम्मद खॉ (पुत्र)

बडे काले खॉ(नाती) छोटे काले खॉ (पुत्र)

बोली बख्श (पुत्र) गामी खॉ

इनाम अली (पुत्र)

गुलाम हैदर (पुत्र) लतीफ अहमद

चाद खॉ सिद्धार खॉ के छोटे भाई

लल्ली मसीत खॉ (पुत्र)

लंगडे हुसैन खॉ (पुत्र)

लंगडे हुसैन खॉ (पुत्र)

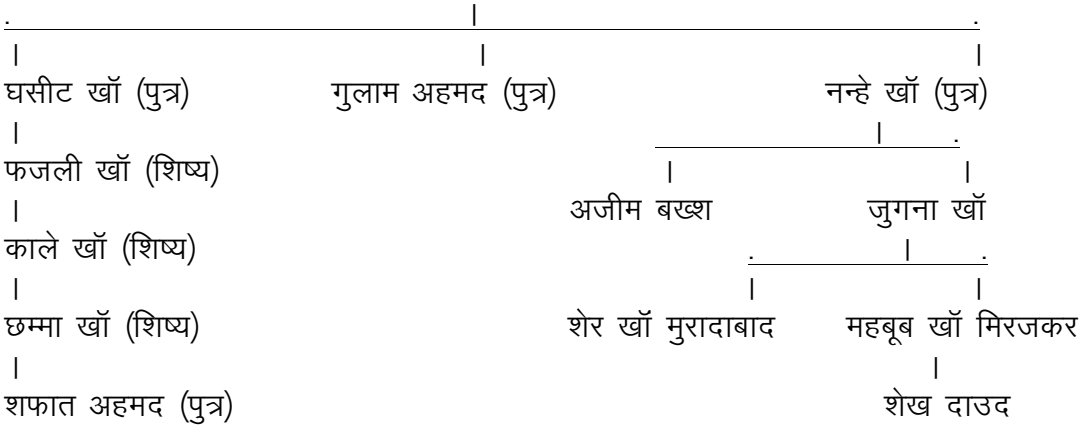

अजीम बख्श जावरे वाले

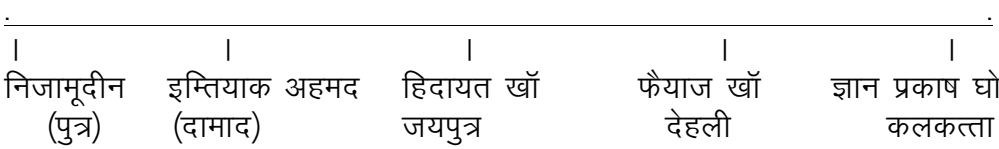

ज्ञान प्रकाश घोष

बोली बख्श

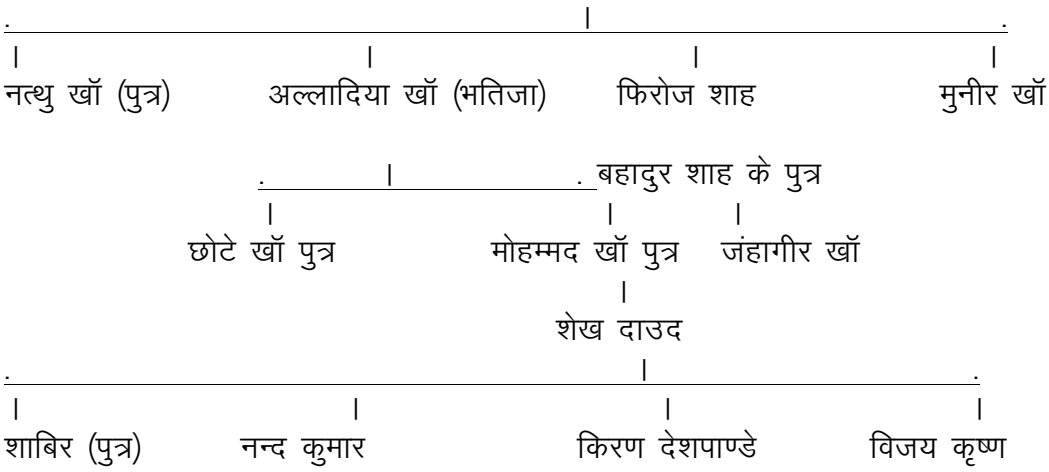

जहांगीर खॉ

शेख दाउद	अब्दुल हफीज उदयपुर	इस्माईल हददू	चतुर लाल	महबूब खॉ मिरजकर	नारायणराव इन्दौर

2.6.1.1 देहली घराने की वादन शैली अथवा बाज – देहली घराने की वादन शैली का जन्म एवं विकास देहली में ही हुआ इसलिए इसे देहली बाज कहा जाता है। इसमें दाहिने तबले की स्याही पर तर्जनी (पहली अंगुली) एवं मध्यमा (बीच की अंगुली) ही प्रयोग की जाती है अतः इसको दो अंगुली का बाज कहते हैं। तिट एवं तिरकिट के लिए एक समय पर एक ही अंगुली का प्रयोग करते हैं। तिट बोल ति वर्ण को मध्यमा से स्याही पर दबाकर आघात करने से एवं ट वर्ण तर्जनी अंगुली से ति के ही स्थान पर घात करने से प्राप्त करते है। धा एवं ता वर्ण तर्जनी अंगुली को किनार पर दबाकर निकाला जाता है। बोलों की रचनाओं में किनार का बडा सुन्दर प्रयोग किया जाता है इसलिए देहली बाज को किनार का बाज भी कहा जाता है। पखावज के खुले बोलों के विपरीत तबले पर बन्द बोलों का प्रयोग किया जाता है जिससे यह बाज कोमल एवं मधुर है। इस बाज में दाहिने तबले पर हाथ का फैलाव कम रहता है अतः इस बाज की रचनाएं अधिक लय में बजाई जा सकती हैं। इस बाज की विशेषता मुख्य रूप से इसके पेशकार एवं कायदे हैं। कायदों में पल्टे बजाना ही इसकी मुख्य विशेषता है। मूलतः इस बाज में गत, परन नहीं थी परन्तु बाद में देहली बाज की बोलों की निकास की शैली पर रेला एवं कुछ गतों का भी निर्माण किया गया। परन इस शैली में नहीं है। छोटे–छोटे टुकड़े, मुखडे एवं मोहरें भी वादन शैली (बन्द बोल) के अनुसार इस बाज में पाए जाते हैं, यद्यपि इनको इस बाज में अधिक महत्व नहीं दिया जाता है। देहली बाज के कायदे चतुस्त्र जाति में होते हैं। कायदों के उदाहरण निम्न हैः–

कायदा – 1

धाति टधा तिट धाधा । तिट धागे तिना किन।

X 2

ताति टता तिट ताता। तिट धागे धिना गिन।

0 3

कायदा –2

धाती धागे नधा तिरकिट। धाति धागे तिना किन।

X 2

ताती ताके नाता तिरकिट। धाति धागे धिना गिन।

0 3

2.6.2 अजराडा घराना – देहली घराने के सिताब खां के दो शिष्य मीरू खॉ एवं कल्लू खॉ उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के गॉव अजराडा में आकर बस गये थे। इन दोनों भाइयों द्वारा देहली बाज में परिवर्तन कर नवीन शैली का विकास किया एवं यह घराना अजराडा गॉव के नाम से ही अजराडा घराना कहलाया। इस घराने को देहली घराने की शाखा माना जाता है। कल्लू एवं मीरू खॉ के वंशज, मोहम्मदी बख्श के वंशजों में इस घराने की परम्परा को आगे बढ़ाया। मोहम्मदी बख्श के पौत्र काले खॉ एवं इनके पुत्र कुतुब बख्श हुए। काले खॉ के दो अन्य पुत्र थे परन्तु इस घराने की परम्परा मुख्य रूप से कुतुब बख्श से आगे बढी। कुतुब बख्श एवं इनके पुत्र हस्सू खॉ अपने समय के श्रेष्ठ तबला वादक थे। हस्सू खॉ के दो पुत्र बब्बू खॉ, शम्भू खॉ एवं भान्जे नन्हें खॉ ने

इस घराने के विकास में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया एवं अपने–अपने स्तर से इस घराने की शैली को विकसित किया। बब्बू खॉ के पुत्र अजीजूद्दीन खॉ, शम्भू खॉ के पुत्र हबीबुद्दीन खॉ एवं भतीजे अब्दुल करीम खॉ (चौधरी) इस घराने की परम्परा को अपने शिष्यों के माध्यम से आगे बढ़ाया। नन्हें खॉ से भी अजराडा घराने की परम्परा चली जिसमें नियाजु खॉ एवं हशमत अली हुए। वर्तमान में इस घराने की परम्परा को वर्तमान में हशमत अली एवं इनके पुत्र अकरम खॉ आगे बढ़ा रहे हैं। अजीजूद्दीन की शिष्य परम्परा में महबूब हुसैन एवं विजय कृष्ण इस परम्परा को आगे बढ़ा रहे हैं। हबीबूद्दीन अपने समय के बेजोड़ तबला वादक हुए। उनकी शिष्य परम्परा बहुत लम्बी है जो कि आप तालिका के माध्यम से समझेंगे। वर्तमान में हबीबूद्दीन की परम्परा को उनके पुत्र मंजू खॉ एवं शिष्य सुधीर कुमार सक्सेना हैं जो शिष्यों के माध्यम से इस परम्परा को जीवित रखे हुए हैं।

अजराडा घराना

कल्लू खॉ – मीरु खॉ	शम्भू खॉ
मोहम्मदी बख्श	अब्दुल करीम भतीजा, हबीबूद्दीन पुत्र
चांद खॉ	
काले खॉ (काले कन्दू) पुत्र	
कुतुब बख्श	
हस्सू खॉ	

हस्सू खॉ

बब्बू खॉ पुत्र	शम्भू खॉ	नन्हे खॉ भान्जे
अजीजूदीन खॉ पुत्र	हबीबुद्दीन खॉ पुत्र, अब्दुलकरीम खॉ भतीजा	हसमत अली खॉ, अकरम खॉ पुत्र

अजीजूदीन खॉ की शिष्य परम्परा में महबूब हुसैन (श्रीनगर), बशीर अहमद(देहली), यामीन खॉ बम्बई, नजीर खॉ, ईश्वर सिंह, अभय प्रकाश, विजय कृष्ण, राजेश कान्ता। हबीबुद्दीन खॉ की शिष्य परम्परा में मन्जू खॉ पुत्र, रमजान खॉ(भतीजा), सुधीर कुमार सक्सेना (बडोदा), हजारी लाल (मेरठ), मनमोहन सिंह, अमीर मोहम्मद, यशवन्त केलकर, सुन्दर लाल गंगाजी।

2.6.2.1 अजराडा घराने की वादन शैली अथवा बाज – उत्तर प्रदेश के मेरठ जिले के गांव अजराडा के नाम पर ही इसकी वादन शैली अजराडा बाज के नाम से जानी गई। देहली घराने की वादन शैली में बांये बोलों का प्रयोग एवं तिस्त्र जाति (आड लय) का प्रयोग कर अजराडा बाज

मौलिक शैली के रूप में स्थापित हुआ। घेघे नका, घेतक, धात्रक, दिगदिनागिक बोलों के प्रयोग से नवीन कायदों की रचना की गई। देहली घराने की अपेक्षा अजराडा घराने के कायदे लम्बे होते हैं एवं इनमें देहली घराने की अपेक्षा कायदे में पल्टे बजाने की संम्भावना कम होती है। देहली घराने की भॉति अजराडा बाज भी मुख्यतः पेशकार एवं कायदे के लिए प्रसिद्ध है। मुखड़े, मुहरे, टुकड़े, रेले एवं गत की संख्या बहुत कम है। अजराडा बाज मुख्यतः देहली की भॉति कायदों का बाज है। अजराडा घराने के कलाकार अजराडा बाज के साथ–साथ देहली के कायदों का भी प्रयोग करते हैं। अजराडा घराने के प्रसिद्ध तबला वादक उस्ताद हबीबुद्दीन खॉ जो कि देहली घराने के उस्ताद नत्थू खॉ के भी शिष्य थे, जो देहली एवं अजराडा बाज को भी बड़ी दक्षता से प्रस्तुत करते थे। बाएं तबले के बोलों का दाहिने तबले के बोलों के साथ लड़गुथाव एवं आडलय के कायदे इस बाज की विशेषता है। निम्न कायदों के उदाहरण से आप अजराडा बाज को अच्छी प्रकार समझ सकेंगे।

कायदा 1 – तिस्त्र जाति (आडलय)

घगेन धात्रक धितिट धगेन। धात्रक धिनग तिंगति नाकिन।

X 2

तकेन तात्रक तितिर तकेन। धात्रक धिनग दिनादि नागिन।

0 3

कायदा 2 – त्रिस्त्र जाति (आडलय)

धा–धा –धा– गिनधा –गिन। धात्रक धितिट घिनादि नागिन।

X 2

धात्रक धितिट गिनधा –गिन। धात्रक धितिट घिनति नाकिन।

0 3

ता–ता –ता– किनता –किन। तात्रक तितिट किनति नाकिन।

X 2

धात्रक धितिट गिनधा –गिन। धात्रक धितिट घिनधि नागिन।

0 3

2.6.3 लखनऊ घराना – लखनऊ घराने के संस्थापक उ0 सिद्वार खॉ के पौत्र मोदू खॉ एवं बख्शू खॉ थे। लखनऊ के नवाब के बुलाने पर मोदू खॉ लखनऊ आ गए एवं बाद में इनके छोटे भाई बख्शू खॉ भी लखनऊ आ गए। लखनऊ की संगीत की आवश्यकता के अनुसार मोदू खॉ ने देहली के बाज में परिवर्तन किया एवं देहली बाज से हटकर एक नवीन तबला वादन शैली का निर्माण किया। मोदू खॉ के एक पुत्र जाहिद खॉ थे जिनको मोदू खॉ ने तैयार किया था। परन्तु वे अधिक समय तक जीवित नहीं रहे, अतः लखनऊ घराने की परम्परा उनके छोटे भाई बख्शू खॉ के पुत्र मम्मन खॉ(मम्मू खॉ) से आगे चली। मम्मन खॉ ने अधिक शिक्षा मोदू खॉ से ही प्राप्त की थी। मम्मन खॉ के पुत्र मोहम्मद खॉ हुए। मोहम्मद खॉ के दो पुत्र बड़े मुन्ने खॉ एवं आबिद हुसैन एवं शिष्य वाहिद हुसैन थे। लखनऊ घराने की परम्परा मुख्य रूप से आबिद हुसैन से ही चली। आबिद हुसैन के कई शिष्य हुए जिनमें प्रमुख इनके दामाद एवं भतीजा वाजिद हुसैन, हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी, जहॉगीर खॉ (इन्दौर), अजीम बख्श एवं बनारस के बीरू मिश्र आदि थे। इन शिष्यों के माध्यम से लखनऊ घराने का प्रसार हुआ। वाजिद हुसैन के पुत्र आफाक हुसैन श्रेष्ठ तबला वादक हुए। वर्तमान में इनके पुत्र इलमास खॉ इस घराने का प्रतिनिधित्व कर रहे हैं। अजीम बख्श के पुत्र निजामुद्दीन हुए जिन्होंने लखनऊ बाज की लग्गी–लड़ी बजाने में विशेष ख्याति अर्जित की। जहॉगीर खॉ की शिष्य परम्परा बहुत अधिक है। इनके प्रमुख शिष्यों में महबूब खॉ मिरजकर,

इस्माइल ददू, अब्दुल हाफिज एवं शेख दाउद हैं। लखनऊ घराने के मोदू खॉ से शिक्षा प्राप्त पं0 रामसहाय ने बनारस घराने की स्थापना की एवं बख्शू खॉ के दामाद हाजी विलायत अली के द्वारा फर्रूखाबाद घराने की नींव पड़ी।

लखनऊ घराना

मोदू खॉ	बख्शू खॉ
	मम्मन खॉ (मम्मू खॉ) पुत्र
	मोहम्मद खॉ पुत्र

मोहम्मद खॉ

मुन्ने खॉ पुत्र	वाहिद खॉ	आबिद हुसैन पुत्र

आबिद हुसैन

वाजिद हुसैन (दामाद एवं भतीजा)	हिरेन्द्र किशोर (राम चौधरी)	अजीम बख्श	जहागीर खॉ इन्दौर
आफाक हुसैन (पुत्र)		निजामुदीन	
इलमास खॉ (पुत्र)			

जहागीर खॉ (इन्दौर)

अब्दुल हाफिज उदयपुर	इस्माल ददू	महबूब खॉ मिरजकर	शेख दाउद

2.6.3.1 लखनऊ घराने की वादन शैली अथवा बाज – लखनऊ बाज देहली बाज की अपेक्षा खुला एवं जोरदार है। लखनऊ बाज का विकास लखनऊ के नवाब वाजिद अली शाह के समय में हुआ। जिस समय लखनऊ में नृत्य का प्रचार था एवं ठुमरी दादरा गायन भी प्रचलित था। मोदू खॉ से पूर्व लखनऊ में भी पखावज का ही प्रयोग नृत्य के साथ हो रहा था परन्तु नृत्य में ठुमरी भाव एवं स्वतन्त्र ठुमरी गायन के साथ पखावज की संगत उपयुक्त नहीं लग रही थी। ऐसे समय में मोदू खॉ ने नृत्य एवं ठुमरी के साथ संगत करने योग्य शैली का निर्माण किया जिससे लखनऊ का बाज खुला हो गया, स्याही पर हाथ के पंजे का प्रयोग होने लगा एवं किनार की अपेक्षा लव का प्रयोग अधिक होने लगा। तिर के कायदों में 'ति' वर्ण तर्जनी से एवं 'ट' वर्ण मध्यमा एवं कनिष्ठा को

जोड़कर आघात करने से निकाला गया, जो कि देहली बाज की निकास विधि के विपरीत था। ठुमरी के साथ लग्गी एवं लड़ी के बजाने हेतु बोलों का निर्माण किया। इस बाज में कायदों की अपेक्षा, रेले, गत, गत–कायदा, टुकड़े, परन एवं चक्करदार बोलों की रचना की गई। इस बाज के वादक नृत्य की कुशलता पूर्वक संगत करते थे एवं इस बाज को नचकरन बाज भी कहा गया। इस बाज में धिट–धिट, धागे तिट, ताके तिट, धिक, क–धाड़न, धाड़न, तकट, धिरकिट तक धिरधिर किटतक, धिनगिन, धिनतक, तकधिन, धेतिरकिटतक, धिड़नग, आदि बोलों का प्रयोग अधिक होता है। लखनऊ बाज का परिचय निम्न उदाहरणों से स्पष्ट हो जायेगाः–

कायदा 1

धागेतिट धागेतिरकिट धिनागिन धागेतिट । धागेनधा तिरकिटघिन धागेतिरकिट तिनाकिन।
X 2
ताकेतिट तकितिरकिट तिनाकिन ताकेन । धागेनधा तिरकिटघिन धागेनिरकिट घिनागिन।
0 3

गत कायदा

तकिटधा घेतिरकिरतक घिरघिरकिटतक तकिरधा।
X
घिरघिरकिटतक धातिरकिटतक घिरघिरकिटतक तकिरधा।
2
तकिटधा घेतिरकिरतक घिरघिरकिटतक तकिरधा।
0
घिरघिरकिटतक धातिरकिटतक घिरघिरकिटतक तकिरधा।
3

टुकडा

घेतिरकिटतक ता कतघेघे दीं । नगघे– –ता घेतरा– –नधा– ।
धिंता कति टघेतिर किटतकतकिट । घाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट।
धा– कति टघेतिर किटतकतकिट । धाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट।
धा– कति टघेतिर किटतकतकिट । धाघेतिर किटतकतकिट धाघेतिर किटतकतकिट।

इस टुकडे का प्रयोग नृत्यकारो ने भी किया ।

2.6.4 फर्रुखाबाद घराना – सिद्धार खॉ के पौत्र बख्शू खॉ जिन्होनें लखनऊ घराने की वादन शैली के विकास में अपना योगदान दिया था, ने अपकी लडकी की शादी फर्रूखाबाद के विलायत अली से की थी। विलायत अली ने लगभग पांच बार हज यात्रा की थी एवं धार्मिक एवं आध्यात्मिक प्रकृति के व्यक्ति थे। इसी कारण इनके नाम के साथ हाजी जुड गया एवं ये हाजी विलायत अली के नाम से प्रसिद्ध हुए। इनको दहेज में लखनऊ बाज का तबला भेंट में मिला था जिसमें मुख्य रुप से गतें थी। इसी लखनऊ घराने से मिले तबले के आधार पर आपने एक नवीन शैली को जन्म दिया। इनकी वंश परम्परा एवं शिष्य परम्परा ने इस शैली का विकास किया जो कि फर्रूखाबाद घराने के नाम से स्थापित हुआ। हाजी विलायत अली के दो पुत्र निसार अली एवं हुसैन अली हुए जिन्होनें शिष्यों के माध्यम से फर्रूखाबाद घराने की परम्परा को आगे बढाया। इनके प्रमुख शिष्य मुनीर खॉ थे जिनके शिष्य अमीर हुसेन (भान्जे), गुलाम हुसैन, शमसुद्दीन खॉ, हबीबूद्दीन खॉ एवं अहमद जान थिरकवा ने तबला वादन में ख्याति प्राप्त की। अहमद जान थिरकवा को भारत सरकार

द्वारा पदम भूषण से भी अलंकृत किया गया। अमीर हुसैन खॉ के प्रमुख शिष्यों में निखिल घोष, शेर खॉ (नागपुर), माणिक राव पसेपटकर एवं चांद खॉ हुए। अमीर हुसैन मुख्य रुप से बम्बई में रहे। वर्तमान में इनके पुत्र पाया खॉ इस परम्परा को आगे बढा रहे हैं। अहमद जान थिरकवा के नाम से ऐसा कोई विरला ही होगा जो कि परिचित न हो। इनकी वंश परम्परा में इनके छोटे भाई मोहम्मद जान, दामाद अहमद अली, भतीजा जमीर अहमद हुए एवं प्रमुख शिष्यों में प्रेम बल्लभ, रोजवेल लायल, निखिल घोष एवं अता हुसैन (रामपुर) हैं। मोहम्मद जान के पुत्र रशीद मुस्तफा वर्तमान में तबला वादन के क्षेत्र में प्रसिद्धि पा रहे है। अहमद जान थिरकवा के शिष्यों ने भी इस परम्परा को आगे बढाने में अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया जिनमें मुख्य रुप से प्रेम बल्लभ एवं पं0 निखिल घोष हैं।

हाजी विलायत अली के दामाद हुसैन बख्श थे। इनकी परम्परा को अल्लादिया खॉ ने हैदराबाद में प्रचारित किया। इनके दो पुत्र मोहम्मद खॉ एवं छोटे खॉ ने हैदराबाद शिष्य परम्परा को बढाया जिसमें शेख दाउद ने विशेष रुप से तबला वादन में ख्याति अर्जित की। शेख दाउद के भी कई शिष्य तैयार हुए।

करम इतल भी हाजी विलायत अली के प्रमुख शिष्यों में से थे। ये उत्तर प्रदेश के मुरादाबाद जिले में आकर बस गए थे। इनके पुत्र फैयाज खॉ ने इस क्षेत्र में फर्रूखाबाद घराने को स्थापित किया एवं इनसे अहमद जान थिरकवा, हबीबुद्दीन खॉ एवं अजीम बख्श ने शिक्षा प्राप्त की। हबीबुद्दीन खॉ बाद में अजराडा घराने के प्रतिनिधि कलाकार के रुप में स्थापित हुए। अजीम बख्श के पुत्र निजामुद्दीन हुए।

नन्हे खॉ भी हाजी विलायत अली के प्रमुख शिष्यो में से थे। नन्हे खॉ के पुत्र मसीदुल्लाह खॉ एवं इनके पुत्र मसीत खॉ हुए जो मुख्य रुप से कलकत्ता में रहे। मसीत खॉ के पुत्र करामतुल्ला खॉ एवं शिष्य ज्ञान प्रकाष घोष, कन्हाई दत्त, आ.सी. बोराल, मुन्ने खॉ एवं हिरेन्द्र किशोर राय चौधरी हुए। मुन्ने खॉ लखनऊ के मैरिस कालेज में तबला शिक्षक के पद पर रहे एवं यही रह कर इन्होनें शिष्यों के माध्यम से फर्रूखाबाद घराने की परम्परा को आगे बढाया। बाकि सभी शिष्यों ने बंगाल में ही इस परम्परा का विकास किया। वर्तमान में करामतुल्ला के पुत्र शाबिर तबला वादन में श्रेष्ठ तबला वादक के रुप में प्रतिष्ठित हैं। फर्रूखाबाद घराने की तालिका के माध्यम से इस घराने के विकास क्रम को समझेंगे ।

हाजी विलायत अली

निसार अली पुत्र	हुसैन अली पुत्र	हुसैन बख्श	करमइतल	चुडिया बख्श	इमाम नन्नेखॉ	मुबारकअली	सलारी मियां
				हैदर बख्श पुत्र		जहागीर खॉ इन्दौर	
				बन्दे हसन पुत्र			

निसार अली हुसैन अली

अमीर हुसैन भान्जे	गुलाम हुसैन भतीजे	शमसुद्दीन खॉ	हबीबुद्दीन खॉ (इनकी शिष्य परम्परा अजराडा घराने में देखें)	अहमदजान थिरकवा

अमीर हुसैन

पाया खॉ पुत्र | निखिल घोष | शेख खॉ नागपुर | माणिकराव पोपटकर | चांद खॉ कलकता

अहमद जान थिरकवा

मोहम्मद जान भाई | निखिल | अहमद अली दामाद | प्रेम बल्लभ | जमीर अहमद भतीजा | रोजवेल लायल | अता हुसैन

रषीद मुस्तफा

हुसैन बख्श

अल्लादिया खॉ

मोहम्मद खॉ पुत्र | छोटे खॉ पुत्र

शेख दाउद

(षिष्य परम्परा लखनऊ घराने में देखें)

करम इतल

फैयाज खॉ (मुरादाबाद) पुत्र

अहमद जान थिरकवा | शमसुद्दीन खॉ | अजीम बख्श

निजामुदीन खॉ पुत्र

नन्ने खॉ

मसीमुल्लाह खॉ पुत्र

मसीत खॉ पुत्र

मसीत खॉ

करामतुल्ला खॉ पुत्र	ज्ञानप्रकाष घोष	कन्हाईदत्त	आ.सी. बेराल	मुन्ने खॉ लखनऊ	हिरेन्द किशोर राय चौधरी

साबिर खॉ पुत्र

2.6.4.1 फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली अथवा बाज – फर्रूखाबाद घराने की स्थापना प्रारम्भ में लखनऊ घराने की एक शाखा के रुप में हुई थी। परन्तु लखनऊ बाज के ऊपर नृत्य के प्रभाव को फर्रूखाबाद घराने की वादन शैली में समाप्त कर शुद्ध तबले के बोलों के आधार पर फर्रूखाबाद बाज को विकसित किया गया। इस बाज की विशेषता यहां के गत कायदे व गतें हैं। रेले भी इस बाज में बजाए जाते हैं। विभिन्न प्रकार के छन्दों एवं चालों को रौ के रुप में बजाने का आरम्भ इसी घराने में हुआ। अहमद जान थिरकवा तो देहली एवं अजराडा के कायदों की रौ बजाने में सिद्धहस्त थे। विभिन्न यति भेद के अनुसार भी गतों का निर्माण इस बाज की विशेषता है। फर्रूखाबाद बाज को अन्य घरानो के कलाकारों द्वारा भी अपनाया गया है एवं हाजी विलायत अली की गतों को नाम लेकर अपने एकल वादन में बडे गर्व के साथ प्रस्तुत करते हैं। इस बाज में विशेषकर धिर धिर किटतक, घडा–न, धिनगिन, तक तक आदि बोलों का प्रयोग पाया जाता है। एक ही गत के विभिन्न लय के दर्जे बनाकर प्रस्तुत करना भी इस बाज की विशेषता है। मुख्य रुप से यह बाज रौ एवं गतों के लिए प्रसिद्ध है। उदाहरण स्वरुप फर्रूखाबाद बाज की कुछ गतों के उदाहरण प्रस्तुत किए जा रहे हैं जिससे फर्रूखाबाद बाज का परिचय प्राप्त हेगा।

गत कायदा

तकटधा	धिरधिरकिटतक	धिरधिरकिटतक	दीगिनधा।
किडनकनातिट	किडनकतिरकिटतक	धिरधिरकिटतक	दीगिनधा।
तकटता	तिरतिरकिटतक	तिरतिरकिटतक	तीकिनता।
किडनकनातिट	किडनकतिरकिटतक	धिरधिरकिटतक	दीगिनधा।

गत कायदा

धिनगिन	धागेत्रक	धिनगिन	तकतक ।
धिनगिन	धागेत्रक	धिनगिन	धा ।
तकधिन	गिनधागे	धिनगिन	तकतक ।
धिनगिन	धागेत्रक	धिनगिन	ता ।
तिनकिन	ताकेत्रक	तिनकिन	तकतक ।
तिनकिन	ताकेत्रक	तिनकिन	ता ।
तकधिन	गिनधागे	धिनगिन	तकतक ।
धिनगिन	धागेत्रक	धिनगिन	धा ।

गत

धिनघडा–नधि	धाघेघेनगकिन	धिनगिनतकधिन	धागेत्रकधिनाकता।
तकटतकटधिन	धागेत्रकतूनाकता	तकटतकटधिन	धागेत्रकधिनाकता।
धा–नधिकिटतकटधिकिट	धात्रकधितिटकतगदिगिन	धा– किटतक	ता–किटतक ।
ताकिटतकता–नता–न	धा–किटतकता–किटतक	ता–नता–नधा–किटतक	ताकिटतकता–नता–न।

2.6.5 बनारस घराना – बनारस घराने की स्थापना लखनऊ घराने के मोदू खॉ के शिष्य राम सहाय के द्वारा की गई, अतः बनारस घराना भी लखनऊ घराने की देन है। मोदू खॉ की परने पंजाब घराने के पखावज वादन की पुत्री थी, अतः राम सहाय को पंजाब घराने की रचनाएं भी प्राप्त हुई थी जिससे बनारस घराने की वादन शैली में पखावज वादन शैली का प्रभाव है। राम सहाय के षिष्य जानकी सहाय भाई एवं भतीजे थे, जिन्होनें राम सहाय से तबले की शिक्षा प्राप्त की थी। इसके अतिरिक्त इनके शिष्य बैजू महाराज, रामशरण, भगत जी, प्रताप महाराज उर्फ परतप्पू जी थे जिनकी वंश एवं शिष्य परम्परा से बनारस घराने का विकास हुआ। जानकी सहाय के दो शिष्य गोकुल एवं विश्वनाथ थे। विश्वनाथ के शिष्य भगवान प्रसाद एवं पुत्र बीरु मिश्र हुए। बीरु मिश्र ने अपने समय में तबला वादन में बहुत ख्याति प्राप्त की।

भैरो सहाय के शिष्य बलदेव सहाय थे। बलदेव सहाय के शिष्यों में बीक्कू जी, भगवती सहाय, कंठे महाराज एवं पुत्र दुर्गा सहाय उर्फ नन्दू सूरदास थे। इन सभी शिष्यो की अपनी शिष्य परम्परा थी। विक्कू जी के पुत्र गामा जी एवं इनके पुत्र रंगनाथ मिश्र थे। रंगनाथ मिश्र ने बहुत समय तक लखनऊ के मैरिस कालेज वर्तमान भातखण्डे संगीत संस्थान लखनऊ में अपनी सेवाएं दी एवं अनेक शिष्य तैयार किए। भगवती सहाय की शिष्य परम्परा में इनके पुत्र शारदा सहाय एवं शिष्य मंगल सहाय एवं राम शंकर सहाय थे। कंठे महाराज ने अपने भतीजे किशन महाराज को दत्तक पुत्र स्वीकार किया था एवं किशन महाराज को तबला वादन में निपुण किया। कंठे महाराज के शिष्य शीतल प्रसाद मिश्र है जो भातखण्डे संगीत संस्थान से अवकाश प्राप्त हैं। किशन महाराज द्वारा बनारस घराने की परम्परा का बहुत अधिक विकास किया। वर्तमान में इनके पुत्र पूरन महाराज एवं शिष्य कुमार बोस, सुखविन्दर नामधारी एवं तेज बहादुर निगम प्रख्यात तबला वादक है।

दुर्गा सहाय उर्फ नन्दू सूरदास की परम्परा में श्याम लाल प्रसिद्ध तबला वादक थे। इनके प्रमुख शिष्य मधुकर गणेष गोडबोले एवं लालजी श्रीवास्तव ने इलाहाबाद एवं उसके आस पास के क्षेत्र तबले का प्रचार प्रसार किया। इनके प्रमुख शिष्यों में इनके पुत्र अजय किशोर एवं विपिन किशोर, गिरीश श्रीवास्तव, भुवन श्रीवास्तव प्रभुदत्त बाजपेई एवं अनुपम राय हैं। भैरव प्रसाद भगत जी के प्रमुख शिष्य थे। भैरव प्रसाद के प्रमुख शिष्यों में अनोखे लाल, मौलवी मिश्र, महादेव मिश्र एवं महावीर भटट थे। अनोखे लाल अपने समय के बेजोड तबला वादक थे एवं इन्होनें कठिन परिश्रम से तीनताल का ठेका अति दुत गति में साधा था एवं इनको ना धिं धिं ना का जादूगर कहा जाता था। अनोखे लाल के पुत्र राम जी मिश्र में अपने पिता के सभी गुण थे। अनोखे लाल की षिष्य परम्परा के नागेष्वर प्रसाद मिश्र उर्फ पांचू महाराज, ईश्वर लाल, छोटे लाल मिश्र, महापुरुष मिश्र एवं काशी नाथ मिश्र की बनारस घराने के प्रतिष्ठित तबला वादको में गणना की जाती है। प्रताप महाराज उर्फ परतप्पूजी के पुत्र जगन्नाथ थे। जगन्नाथ के दो पुत्र शिव सुन्दर एवं बाचा मिश्र हुए। बाचा मिश्र के पुत्र सामता प्रसाद थे जो गुदई महाराज के नाम से प्रसिद्ध थे। गुदई महाराज ने तबला एकल वादन, नृत्य वाद्य की संगीत में बहुत ख्याति अर्जित की एवं इनको फिल्मों में विशेष तबला वादन हेतु आमंत्रित किया गया था। इनके दो पुत्र कुमार लाल एवं कैलाश एवं प्रमुख शिष्य सत्यनारायण वशिष्ठ एवं जे मेसी थे। गुदई महाराज के तबला वादन शैली से अन्य घरानो के कलाकार भी प्रभावित रहे। निम्न तालिका से बनारस घराने की परम्परा का विकास क्रम स्पष्ट होगा।

बनारस घराना

राम सहाय

जानकी सहाय भाई	भैरो सहाय भतीजा	बैजूमहाराज	रामशरण	भगत जी	प्रतापमहाराज उर्फ परतप्पूजी

जानकी सहाय

गौकुल षिष्य — विश्वनाथ

विश्वनाथ
|
भगवान प्रसाद शिष्य
|
बीरुमिश्र पुत्र

भैरो सहाय
|
बलदेवसहाय

बिक्कू जी — भगवती सहाय — कंठेमहाराज — दुर्गा सहाय पुत्र

बिक्कू जी
|
गामा जी पुत्र
|
रंगनाथ मिश्र पुत्र

भगवती सहाय

शारदा सहाय पुत्र — मंगला सहाय — रामशंकर सहाय

कंठे महाराज

किषन महाराज (दत्तक पुत्र) — शीतल मिश्र शिष्य

किषन महाराज (दत्तक पुत्र)
|
पूरन महराज पुत्र — तेज बहादुर निगम — कुमार बोस — सुखविन्दर नामधारी

दुर्गासहाय उर्फ नन्दू सूरदास
|
श्याम लाल शिष्य

मधुकर गणेश गोडबोले — लालजी श्रीवास्तव इलाहाबाद

लालजी श्रीवास्तव इलाहाबाद
|
विपिन किशोर पुत्र — अजय किशोर पुत्र — गिरीश श्रीवास्तव — भुवन श्रीवास्तव — प्रभु दत्त बाजपई

भगत जी

भैरव जी

अनोखे लाल	मौलवी मिश्र	महादेव मिश्र	महावीर भटट
शिष्य	शिष्य	शिष्य	शिष्य

रामजी मिश्र	बागेश्वर मिश्र	ईश्वरलाल	छोटेलाल	महापुरुषमिश्र	काशीनाथ
पुत्र	शिष्य	शिष्य	शिष्य	शिष्य	शिष्य

प्रताप महाराज उर्फ परतप्पूजी

जगन्नाथ पुत्र

शिवसुन्दर पुत्र	बाचा मिश्र पुत्र
	सामता प्रसाद पुत्र

सामता प्रसाद

कुमार लाल पुत्र	कैलाश (पुत्र)	जे मेंसी	सत्यनारायण वशिष्ठ

2.6.5.1 बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज – बनारस घराने की वादन शैली अथवा बाज पर पखावज की वादन शैली का प्रभाव है इस कारण यह बाज खुला एवं जोरदार है। किनार की अपेक्षा लव को प्रयोग अधिक किया जाता है। इस बाज में कायदों का अधिक महत्व नहीं है। यद्यपि इस बाज में रचनाएं कायदे की भांति भी है परन्तु इनका विकास बनारस बाज के अनुसार किया जाता है। चाले, बांट, परन, पडार, गत एवं फरद इस बाज की विशेषता है। पखावज की भांति लम्बी–लम्बी परन एवं पडार बनारस बाज में बहुत अधिक प्रयोग की जाती हैं। धिर धिर किटतक रेला भी बनारस बाज का मुख्य आकर्षण है। पखावज पर प्रयोग होने वाले बोल जैसे धेट धेट, कडधातिट धेत धेक, कता–न धडा–न, तिरकता, गदिगिन बनारस बाज में प्रयोग किए जाते हैं। इसमें पेषकार का प्रयोग नहीं किया जाता है। तबला वादन का आरम्भ दो तीन आवृति की उठान से किया जाता है। पेशकार के स्थान पर बोलों की बांट बजाते हैं। निम्न उदाहरणों से बनारस बाज का परिचय प्राप्त होगा।

कायदा

धीक धिना तिरकिट धिना। धागे नधि कति नाना।
तीक तिना तिरकिट तिना। धागे नधि कधि नाना।

चाल

धा – धि कधि नाती। धाती कधि – ति नाती।
ता –ति कति नाती। धाती कधि – धि नाती।

रेला

धातिर किटतक धिरधिर किटतक। धातिर किटतक तूना किटतक।
तातिर किटतक तिरतिर किटतक। धातिर किटतक धिना किटतक।

गत कायदा

धिरधिर धिरधिर घिडनग दिनतक । धातिर घिडनग धिरधिर घिडनग।
धिरधिर घिडनग दिनतक धिरधिर । घिडनग धातिर घिडनग तिनतक।
तिरतिर तिरतिर किडनक तिनतक। तातिर किडनक तिरतिर किडनक।
धिरधिर घिडनग दिनतक धिरधिर। घिडनग धातिर घिडनग दिनतक।

2.6.6 पंजाब घराना – पखावज घराने की परम्परा पंजाब में भवानी दास अथवा भवानी सिंह पखावजी के षिष्य हददू खॉ, ताज खॉ डेरेदार एवं मियां कादिर बख्श प्रथम से आरम्भ हुई। परन्तु बाद में पखावज घराने की परम्परा मियां कादिर बख्श के पौत्र मियां फकीर बख्श से तबला वादन में परिवर्तित हुई। अतः पंजाब में तबले के घराने की स्थापना मियां फकीर बख्श के द्वारा हुई। मियां फकीर बख्श ने अपने पुत्र कादिर बख्श द्वितीय एवं शिष्य करम इलाही, फिरोज खॉ (लाहोर वाले), मीर बख्श एवं बाबा मलंग को तबला वादन की शिक्षा देकर पंजाब के तबले घराने को स्थापित किया। इनके शिष्यों द्वारा इस परम्परा को आगे बढाया गया। पंजाब घराने के विकास में मियां कादिर बख्श द्वितीय का विषेष योगदान है। मियां कादिर बख्श द्वितीय के प्रमुख शिष्यों में शौकत हुसैन, महबूब बख्श, अल्लाघित्ता लाहौर, अल्ला रक्खा, लक्ष्मण सिंह एवं भतीजा अख्तर हुसैन हुए। अल्ला रक्खा ने भारत में एवं अल्लाघित्ता ने पाकिस्तान में तबला वादन में बहुत प्रतिष्ठा पाई। वर्तमान में अल्ला रक्खा के पुत्र जाकिर हुसैन, फजल कुरैशी एवं तारिक कुरैशी पंजाब घराने के प्रतिनिधि कलाकार हैं। अल्ला रक्खा के शिष्यों में सुबोध मुखर्जी, विनायक खॉ एवं अब्दुल सत्तार हैं। अब्दुल सत्तार ने गुलाम अली (गजल गायक) के साथ बहुत नाम कमाया।

मीर बख्श घीलवाले की परम्परा में बहादुर सिंह एवं महताब सिंह हुए। मीर बख्श ने बहुत रचनाएं की एवं इनका तखल्लुस तकिट धिंधिं धा एवं इनकी रचनाओं यह बोल अवश्य आता था। बाबा मलंग की परम्परा में शौकत हुसैन एवं बहादुर सिंह हुए। शौकत हुसैन ने कादिर बख्श से भी शिक्षा प्राप्त की थी। बहादुर सिंह द्वारा पूरे पंजाब में तबले की परम्परा को फैलाया। इनके शिष्यों में रनबोध सिंह (लुधियाना), लक्ष्मण सिंह(जालन्धर), रमाकान्त सिंह (जालन्धर), नरेन्द्र सिंह (चन्डीगढ), एवं दिलिप सिंह हुए। लक्ष्मण सिंह आकाषवाणी जालन्धर में कार्यरत रहे एवं अनेक शिष्य तैयार किए जिसमें इनके दामाद पवन कुमार, मनमोहन शर्मा एवं काला राम हैं।

पंजाब घराना

मियां कादिर बख्श (प्रथम)

मियां हुसैन बख्श

मियां फकीर बख्श (पुत्र)

करम इलाही | फिरोज खॉ लाहोरवाले | मीर बख्श घीलवाले | मियां कादिर बख्श (द्वितीय) पुत्र | बाबा मलंग

मियां कादिर बख्श (द्वितीय)

महाराज टीकमगढ | शौकत हुसैन | मेहबूब बख्श | अल्लाधिता | अल्लारक्खा | अख्तर हुसैन भतीजा | लक्ष्मण सिंह

अल्ला रक्खा

जाकिर हुसैन पुत्र | फजल कुरैशी पुत्र | तारिक कुरैशी | अब्दुल सत्तार | सुबोध मुखर्जी | विनायक खॉ

मीर बख्श घीलवाले

बहादुर सिंह | महताब सिंह

बाबा मलंग

शौकत हुसैन | बहादुर सिंह

बहादुर सिंह

रनबोध सिंह लुधियाना | कृपालसिंह | लक्ष्मणसिंह जालन्धर | रमाकान्तसिंह जालन्धर | नरेन्द्रसिंह चण्डीगढ | दिलिपसिंह

लक्ष्मण सिंह (जालन्धर)

पवन कुमार दामाद | मनमोहन शर्मा | कालाराम

2.6.6.1 पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज – पंजाब घराने की वादन शैली अथवा बाज पखावज बाज से ही उत्पन्न हुई। तबले के अन्य बाज का सम्बन्ध मूल रुप से देहली से रहा परन्तु पंजाब का तबले का बाज पखावज एवं पंजाब के लोक अवनद्य वाद्य दुक्कड के आधार पर स्वतंत्र रुप से विकसित हुआ। पखावज की भांति यह बाज जोरदार एवं खुला है। तबले पर चारों अगुंलियो का प्रयोग एवं थाप का प्रयोग भी किया जाता है। लयकारी का प्रयोग इस बाज में अधिक होता है। गणित के आधार पर विभिन्न प्रकार की तिहाई इस बाज की विशेषता है। इस बाज में कायदे का प्रचार कम है। रेले एवं गतें इस बाज की विशेषता है। तिरकिटतक बोल का रेला अल्ला रक्खा के वादन की विशेषता रही है। कायदे भी रेले की तरह के होते हैं। इस बाज में धड–न, तगे–न तकिट, धिरकिटतक, धिरधिरके, तिरकिटतक, किटतक, तिकिट, धुमकिटतक बोलों का प्रयोग विषेषकर पाया जाता है। चक्रदार रचनाओं के विभिन्न प्रकार भी इस बाज की विशेषता है एवं अप्रचलित तालें जैसे नौमात्रा, ग्यारह मात्रा, तेरह मात्रा आदि तालें भी इस बाज में बजाई जाती हैं। गणित एवं लयकारी के प्रयोग से यह बाज क्लिष्ट है। बोलों को बोलने में इस बाज में यहां की पंजाबी भाषा का प्रभाव है। जैसे धाती को धात, धाधा का धाडा, धिर धिर को धेरधेर बोला जाता है। इस बाज की विशेषताएं निम्न उदाहरण से स्पष्ट हो जाएगा।

कायदा

धातिरकिटतक तिरकिटतकतिर । किटतकतिरकिट धिनागिन।
धाती धागे धिनागिन । धाती धागे तिनाकिन।
तातिरकिटतक तिरकिटतकतिर । किटतकतिरकिट धिनागिन।
धातीधागे धिनागिन । धातीधागे धिनागिन।

टुकडा–झपताल

ताकिटधि किटधिट। धिटकता गदीगिन नगनग। ना–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता।

X 2 0 3

धा–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता। धा–कता धिटकता। तगे–न धिटकता धा–कता।

X 2 0 3

2.7 तबले की वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन

तबले की वादन शैली का जन्म देहली बाज से हुआ। देहली बाज बंद बाज है। इसमें तबले पर हाथ साधने के लिए कायदों का निर्माण किया गया जो कि बाद में देहली घराने की शैली ही बन गई। चांट का प्रयोग एवं स्याही पर तिरकिट बोल की निकास के लिए पहली दो अंगुली का ही प्रयोग किया गया जिससे यह बाज बन्द एवं मधुर हो गया। देहली बाज के कायदे चतस्त्र जाति के होते हैं। यह बाज मुख्य रुप से पेशकार एवं कायदे का बाज है यद्यपि बाद में वादन शैली के अनुरुप रेला, गत एवं टुकडे भी निर्मित किए गए। देहली घराने से ही एक शाखा अजराडा घराने की निकली। देहली बाज का आधार लेते हुए अजराडा बाज का प्रयोग अधिक किया गया एवं कायदों की रचना तिस्त्र जाति में की गई। बोलों की निकास में परिवर्तन नहीं हुआ परन्तु बाएं के

प्रयोग से कायदों का मौलिक रुप निकल आया जिससे अजराडा बाज स्थापित हुआ। तिस्त्र जाति के कायदों से अजराडा बाज देहली बाज से एकदम अलग से पहचाना जाता है।

बाज की दृष्टि से संगीत जगत में तबले के दो बाज पश्चिम बाज एवं पूरब बाज प्रचलित है। पश्चिम बाज में देहली एवं अजराडा व पूरब बाज में लखनऊ बाज, फर्रूखाबाद बाज एवं बनारस बाज है। पंजाब बाज का अपना अस्तित्व है। देहली बाज से लखनऊ बाज का जन्म हुआ। देहली बाज में लखनऊ क्षेत्र की सांगीतिक आवश्यकता के अनुसार लखनऊ बाज का जन्म हुआ। लखनऊ में नृत्य का अधिक प्रचलन था। वाजिद अली शाह जो कि लखनऊ के नवाब थे संगीत के प्रेमी थे एवं स्वयं नृत्यकार भी थे। नृत्य की संगीत के लिए देहली का बाज जो कि बंद बाज था अधिक उपयुक्त नहीं लगा अतः लखनऊ का बाज खुला हो गया। तिट बोल की निकास देहली के अपेक्षा उल्टी हो गई जिससे तिट ने तेट का रुप ले लिया एवं जोरदार बोल हो गया। तिरकिट में भी सभी अंगुलियों का प्रयोग किया गया। हथेली का प्रयोग भी धिरधिर बोल की निकास के लिए किया जाने लगा जो कि देहली बाज में नहीं होता था। इस प्रकार देहली का बाज लखनऊ में खुला एवं जोरदार हो गया। लखनऊ बाज को नचकरन बाज भी कहा गया।

पूरब के लखनऊ घराने से ही फर्रूखाबाद बाज एवं बनारस बाज ने जन्म लिया। लखनऊ बाज की रचनाओं में नृत्य का प्रभाव था अतः फर्रूखाबाद बाज को शुद्ध रुप से तबला वादन शैली पर आधारित किया गया। लखनऊ बाज के स्वतंत्र रेले की अपेक्षा फर्रूखाबाद बाज में रौ बजाने की तकनीक विकसित की गई। रौ, रेले की भांति ही दुत लय में धारा प्रवाह से बजाई जाती है। कायदों के स्वरुप एवं चालों के स्वरुप का आधार लेकर रेले में प्रयुक्त होने वाले बोलों का प्रयोग रौ में किया जाता है। रौ का वजन कायदे एवं चाल के वजन के स्वरुप होता है। तबले के बोलों का आधार लेकर गतों का निर्माण किया गया। लखनऊ बाज में कायदा, रेला, टुकडे एवं गते थी जबकि फर्रूखाबाद बाज की विषेषता इसकी रौ एवं गते थी। फर्रूखाबाद बाज की गतों में लय एवं यति का प्रयोग पाया जाता है। लखनऊ बाज की एवं फर्रूखाबाद बाज की गतों को उनकी रचना से अलग–अलग पहचाना जाता है। पूरब की अन्य शाखा बनारस बाज भी लखनऊ की भांति खुला है परन्तु लखनऊ की अपेक्षा अधिक जोरदार है। बनारस में भी नृत्य प्रचलित है एवं नृत्य एक घराने, घराना बनारस के नाम से विख्यात रहा। अतः बनारस बाज का विकास भी नृत्य के परिवेष में हुआ। बनारस में ठुमरी, कजरी, चैती आदि गाने की परम्परा भी रही है, अतः बनारस के बाज में तबले पर बजने वाली लग्गी एवं लडी भी जुड गई। नृत्य में प्रयोग होने वाली देवी देवताओ की स्तुति का भी बनारस बाज के तबले पर बजाया जाने लगा एवं बनारस बाज का अंग बन गया जो कि पूरब के अन्य बाज, लखनऊ एवं फर्रूखाबाद में नहीं था। बनारस बाज में पखावज की रचनाओं को भी बजाया जाता है। कहरवा में बजाई जाने वाली लग्गी के स्वरूप की बांट एवं चाल बनारस बाज की विषेषता है जो कि पूरब के अन्य बाज में नहीं है। लम्बी–लम्बी परनें, पराड एवं एक विषिष्ट प्रकार की गत जिसे फरद कहा जाता है, बनारस बाज की मुख्य विशेषता है। इन सभी से बनारस बाज पूरब के अन्य बाज लखनऊ एवं फर्रूखाबाद बाज से भिन्न है एवं अपनी अलग पहचान रखता है।

पंजाब बाज का सम्बन्ध देहली बाज से नहीं रहा बल्कि पखावज वादन शैली के अधार पर ही इस बाज का विकास हुआ, अतः यह अन्य सभी बाजों से भिन्न है। इसमें देहली, अजराडा या लखनऊ बाज की भांति कायदे नहीं होते परन्तु इसके कायदे रेले की तरह होते हैं। बनारस बाज की भांति इसमें पखावज की गतों को ही तबले पर बजाया जाता है। पंजाब घराने के उस्तादों द्वारा तबले के बोलो से निर्मित गतें भी बनाई गई जो अन्य घरानों की गतों से भिन्न है। घिरकिट एवं धुमकिट बोलो का प्रयोग पंजाब बाज में अधिक है जो कि तबले के अन्य बाजों में नहीं के बराबर है। कठिन लयकारीयां का एवं विभिन्न प्रकार की तिहाई का प्रयोग इस बाज की विशेषता है जो अन्य बाजों में नहीं पाई जाती। बनारस बाज से केवल यह समानता है कि यह पंजाब बाज बनारस बाज की तरह खुला एवं जोरदार है।

वर्तमान समय में आवागमन के साधन, टी.वी एवं अन्य ऑडिया–विडियो यंत्रो के माध्यम से संगीत सुनने की सुविधा उपलब्ध हो गई है इस कारण कोई भी वादन शैली अपने मौलिक स्वरुपों में स्थापित रहे, यह कठिन हो रहा है। वादन शैलियों का प्रभाव एक दूसरे की वादन शैली पर पडना स्वाभाविक है एवं कलाकार भी विभिन्न शैलियो से समन्वय करने की चेष्टा भी करते हैं। एक ही कलाकार कई घरानों से षिक्षा लेता है जो कि पहले के समय में भी प्रचलित था। कई वादन शैलियों का अध्ययन कर कलाकार अपनी मौलिक वादन शैली विकसित करता था। देहली बाज एवं अजराडा बाज को कलाकार संयुक्त रुप से प्रयोग करते है एवं रेले, रौ एवं गते का प्रयोग लखनऊ अथवा फर्रूखाबाद बाज की तरह होता था। उस्ताद अहमज जान थिरकवा ने देहली, अजराडा एवं फर्रूखाबाद तीनों का सुन्दर समन्वय कर अपनी व्यक्तिगत शैली बनाई थी। पुराने कई उस्तादों ने लखनऊ, देहली एवं फर्रूखाबाद घराने से षिक्षा प्राप्त की थी। बनारस घराने के कलाकार केवल बनारस बाज का ही प्रयोग करते हैं यद्यपि बनारस घराने के सामता प्रसाद ने देहली बाज के कायदे एवं फर्रूखाबाद की गतों को बजाने में संकोच नहीं किया। वर्तमान पंजाब घराने के उस्ताद जाकिर हुसैन भी किसी भी अन्य बाज की रचना का प्रयोग करने में परहेज नहीं करते हैं। वर्तमान कलाकार वादन शैलियों का गुलदस्ता बनाकर श्रोताओ के समक्ष प्रस्तुत करते है एवं सफल सिद्ध होते हैं।

अभ्यास प्रश्न

1. पखावज की वादन शैली के संस्थापक का नाम बताइये।
2. पखावज के घराने का नाम लिखिए।
3. पखावज के पंजाब घराने के संस्थापक का नाम लिखिए।
4. तबले के घरानों का नाम लिखिए एवं प्रत्येक घराने के संस्थापक का नाम लिखिए।
5. देहली बाज को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
6. देहली बाज किस रचना के लिए प्रसिद्ध हैं?
7. अजराडा बाज के कायदे किस जाति के होते हैं?
8. लखनऊ बाज को अन्य किस नाम से जाना जाता है?
9. फर्रूखाबाद बाज किस रचना के लिये प्रसिद्ध है?
10. बनारस बाज की दो रचनाओ के नाम बताइए जो अन्य किसी बाज में नहीं होती है।
11. पंजाब बाज के किसी वर्तमान कलाकार का नाम लिखिए।

2.8 सारांश

इस इकाई के अध्ययन के पष्चात आप पखावज के वर्ण एवं उनको निकालने की विधि से परिचित हो गए होंगे। पखावज के घरानों के विषय में एवं उनकी वादन शैली को आप जान चुके है। इसी इकाई में तबले के घराने एवं उनकी वादन शैली का भी आपको अध्ययन कराया गया है, जिससे आप तबला वादन सुनकर घराने को पहचानेंगे। घरानों के अध्ययन में आपने देखा कि एक ही उस्ताद ने कई घरानों से शिक्षा प्राप्त की एवं अपनी व्यक्तिगत शैली का निर्माण कर संगीत जगत में अपनी पहचान बनाई। विशेषकर ऐसे ही कलाकार शिखर पर रहे हैं। इस इकाई में विभिन्न घरानों की वादन शैली का तुलनात्मक अध्ययन एवं प्रत्येक घराने की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है जिससे आप वादन शैली के आधार पर घराने को अलग अलग कर सकेंगे। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अपनी रुचि के अनुसार पखावज अथवा तबला वादन में अपने लिए बाज का चयन कर सकेंगे जो कि आप की भविष्य की विशेष शिक्षा के लिए सहयोगी होगा।

2.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. भवानी दास अथवा भवानी सिंह
2. कुदऊ सिंह घराना एवं नाना पानसे घराना
3. कादिर बख्श प्रथम
4. **घराना – संस्थापक**
   - देहली – सिद्धार खॉ
   - अजराडा – कल्लू खॉ एवं मीरु खॉ
   - लखनऊ – मोदू खॉ एवं बख्शू खॉ
   - फर्रूखाबाद – हाजी विलायत अली
   - बनारस – राम सहाय
   - पंजाब – मियां फकीर बख्श
5. किनार का बाज
6. कायदा
7. तिस्त्र
8. नचकरन बाज
9. गत
10. फरद एवं पडार
11. उ0 जाकिर हुसैन

2.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. शुक्ला, डा0 योगमाया, *तबले का उद्‌गम, विकास और वादन शैलियां,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

2. मिस्त्री, आबान ई0, पखावज और तबला के घराने एवं परम्पराएं, स्वर साधना समिति, एनेक्स जम्बुलबाडी, मुम्बई।

3. सेन, डॉ0 अरूण कुमार, *उत्तर भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,* मध्यप्रदेश ग्रंथ आकादमी, भोपाल।

4. साभार गूगल।

2.11 निबन्धात्मक प्रश्न

1. पखावज के घरानों एवं उनकी वादन शैली के विषय में लिखिए।
2. तबले के घरानों एवं उनकी वादन शैली के विषय में लिखिए।
3. तबले की विभिन्न वादन शैलियों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।

इकाई 3 – मार्गी ताल, देशी ताल एवं उत्तर भारतीय तालों का वर्तमान स्वरूप

3.1 प्रस्तावना
3.2 उद्देश्य
3.3 मार्गी एवं देशी संगीत
3.4 मार्गी ताल
3.5 देशी ताल
3.6 मार्गी व देशी तालों की तुलनात्मक तालिका
3.7 उत्तर भारतीय तालों का वर्तमान स्वरूप
3.8 सारांश
3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर
3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
3.11 निबन्धात्मक प्रश्न

3.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0पी0ए0एम0टी0–601 पाठ्यक्रम की तीसरी इकाई है। पूर्व की इकाईयों में आपने उत्तर भारत के अवनद्य वाद्य पखावज एवं तबले का अध्ययन किया जिससे आप इन वाद्यों की उत्पत्ति, विकास एवं उपयोगिता के विषय में जान गए हैं। इन्हीं इकाइयों के माध्यम से आप पखावज की वादन विधि एवं पखावज व तबले के विभिन्न घरानों एवं इनकी वादन शैलियों के विषय में भी जान गए हैं।

प्रस्तुत इकाई में प्राचीन ताल पद्धति, मार्गी एवं देशी ताल के विषय में एवं वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के विषय में बताया गया है।

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप प्राचीन ताल पद्धति एवं वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के सम्बन्ध के विषय में जान सकेंगे।

3.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात् आपः–

1. मार्गी ताल एवं देशी तालों को समझ सकेंगे।
2. मार्गी संगीत एवं देशी संगीत के भेद को जान सकेंगे।
3. वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति को समझ सकेंगे।
4. प्राचीन तालों से इनके सम्बन्धों को जान सकेंगे।

3.3 मार्गी एवं देशी संगीत

मार्गी संगीत में प्रयोग होने वाली तालों को मार्गी ताल एवं देशी संगीत में प्रयोग होने वाली तालों को देशी ताल कहा गया, अतः पहले मार्गी एवं देशी संगीत को समझने की आवश्यकता है। भारतीय संगीत का मूल ग्रन्थ भरत का नाट्यशास्त्र है जिसमें भारतीय संगीत के मूल सिद्धान्तों को स्थापित कर, उनकी विवेचना एवं व्याख्या की गई है। लय, संगीत का आवश्यक अंग है। नाट्यशास्त्र में लय एवं ताल की व्याख्या भी की गई। अतः लय–ताल हेतु भी नाट्यशास्त्र मूल ग्रन्थ है। नाट्यशास्त्र में कहीं भी मार्गी एवं देशी शब्दों का प्रयोग नहीं हुआ। नाट्यशास्त्र में भारतीय संगीत के दो रूपों के लिए गान्धर्व एवं गान शब्दों का प्रयोग किया गया है। जो संगीत गन्धर्वों द्वारा प्रयोग किया जाता था एवं निश्चित तौर पर कल्याणप्रद था, उसे गान्धर्व कहा गया। जो संगीत वाग्गेयकारों द्वारा जन रंजन हेतु बनाया गया उसे गान कहा गया। शारंगदेव के संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में मार्गी एवं देशी शब्दों का प्रयोग किया गया जो कि क्रमशः गान्धर्व एवं गान का पर्याय है। मार्गी संगीत वह संगीत था जिसको ब्रह्मा एवं देवों ने खोजा एवं भरत आदि ऋषियों ने महादेव के सम्मुख प्रस्तुत किया। यह संगीत स्वर्ग हेतु था एवं कल्याणकारी था। देशी संगीत की रचना लोक रंजन हेतु प्रकृति के आधार पर व भिन्न–भिन्न रूचि के आधार पर की जाती थी। भरत ने चौथे अध्याय में गान्धर्व एवं गान के विषय में निम्न प्रकार से व्याख्या की :–

अनादिसंप्रदायं यद् गन्धर्वैः सम्प्रयुज्यते।
नियतं श्रेयसां हेतुस्तद् गान्धर्व जगुर्बुधाः।।
यज्जु वाग्गेय कारेण रचितं लक्षणाविन्तम्।
देषीरागादिषु प्रोक्तं तद्गानं जनरन्जनम्।।

उपरोक्त श्लोक का अर्थ इस प्रकार है – जो अनादि संप्रदाय, गन्धर्वों द्वारा प्रयुक्त, नियत रूप से कल्याणप्रद है, वह गान्धर्व है और जो वाग्गेय द्वारा रचित, लक्षणों से पूर्ण, देशी रागों में तथा जन रंजन करने वाला हो, वह गान है।

संगीत रत्नाकर में मार्गी एवं देशी संगीत की व्याख्या निम्न श्लोक के माध्यम से की है। श्लोक की पहली पंक्ति में संगीत को गायन, वादन तथा नृत्य का समुच्चय रूप माना गया है।

गीतं वाद्यं तथा नृत्यं त्रय संगीत मुच्यते।
मार्गो देषति तद् द्वेधा तत्र मार्गः स उच्यते।।
यो मार्गितो विरिंच्याद्यैः प्रयुक्ता भरतादिभिः।
देवस्य पुरतः देषे जनानां यद्रुच्या हृदयरंजकम।।
गीतं च वादनं नृत्यं तदेषीव्यभिधीयतं।।

इस श्लोक का अर्थ समझने से मार्गी एवं देशी संगीत का भेद स्पष्ट होगा जो इस प्रकार है – गीत, वाद्य एवं नृत्य का समुच्यय संगीत है जो दो प्रकार का है – मार्गी एवं देशी संगीत जिसमें मार्गी संगीत उच्च है। भरत आदि ऋषियों ने शम्भू अर्थात महादेव के सम्मुख प्रस्तुत किया एवं जो निश्चित रूप से कल्याणकारी है, मार्गी संगीत है। देशी संगीत के विषय में अन्तिम की दो पंक्तियों में वर्णन है जिसके अनुसार देशी संगीत वह संगीत है जिसमें गीत, वाद्य एवं नृत्य देश–देश में लोगों की रूचि के अनुसार प्रयुक्त होता है एवं हृदयरंजक होता है।

साधारण भाषा में मार्गी का सम्बन्ध मार्ग से है, जिसका अर्थ ऐसा संगीत से है जो धार्मिक एवं आध्यात्मिक मार्ग हेतु प्रयोग किया जाए। देशी का सम्बन्ध देश से है अर्थात् देश–देश में लोगों की रूचि के अनुसार प्रयोग किया जाने वाला संगीत। मार्गी संगीत में प्रयोग होने वाली ताल मार्गी ताल एवं देशी संगीत के साथ प्रयोग होने वाली ताल देशी ताल कहलाई। अभी मार्गी संगीत एवं देशी संगीत के भेद को स्पष्ट किया गया है अब आगे मार्गी ताल एवं देशी ताल की चर्चा की जाएगी।

3.4 मार्गी ताल

भरत ने अपने ग्रन्थ नाट्यशास्त्र में पांच मार्गी तालों का उल्लेख किया जिनकी संख्या एवं स्वरूप में कभी कोई परिवर्तन नहीं हुआ। इनका प्रयोग गीतियों में होता था तथा ये इस प्रकार हैं – चच्चत्पुट, चाचपुट, षटपितापुत्रकम, सम्पक्वेष्टाक एवं उद्घट्ट। चच्चत्पुट तथा चाचपुट क्रमशः चतुरश्र एवं तिस्त्र जाति के प्रतिनिधि ताल हैं। मार्गी तालों को प्रदर्शित करने की क्रिया को भरत ने कलाविधि कहा जिसको बाद में क्रिया ही कहा गया। क्रिया दो प्रकार की थी सशब्द एवं निशब्द। परन्तु मार्गी तालों में केवल सशब्द क्रिया का ही प्रयोग होता था। सशब्द क्रिया जो मार्गी तालों में प्रयोग की गई वह निम्न प्रकार से है :–

शम्पा – इसको पहले अक्षर 'श' से प्रदर्शित करते हैं एवं दाहिने हाथ से आघात करने को शम्पा कहते हैं।
ताल – इसको इसके पहले अक्षर 'ता' से प्रदर्शित करते हैं एवं बाएं हाथ से आघात करने पर ताल कहते हैं।
सन्निपात – इसको इसके पहले अक्षर 'स' से प्रदर्शित करते हैं एवं दोनों हाथ के परस्पर आघात को सन्निपात कहते हैं।

निशब्द क्रियाओं के विषय में देशी ताल में चर्चा करेंगे। मार्गी तालों में केवल लघु, गुरू एवं प्लुत अंगों का ही प्रयोग किया जाता था जोकि ताल के स्वरूप को निश्चित करते हैं। ये अंग निम्न प्रकार हैं –

नाम	चिन्ह	मात्रा
लघु	।	1
गुरू	ऽ	2
प्लुत	ऽ	3

इन अंगों का पारस्परिक सम्बन्ध निम्न प्रकार से है :–

2 लघु 1 गुरू

3 लघु 1 प्लुत

पांच मार्गी तालों के स्वरूप निम्न प्रकार से है जिसमें लघु, गुरू तथा प्लुत का प्रयोग एवं कलाविधि दी गई है:–

चच्चत्पुट ताल

स्वरूप	ऽ	ऽ	।	ऽ	मात्रा – 8
यथाक्षर	च	च्च	त्यु	ह	
कलाविधि	सं	श	ता	श	
मात्रा रूप	12।	34।	5।	678।	

इस ताल का स्वरूप गुरू, गुरू, लघु एवं प्लुत का है, जिसमें गुरू की दो–दो मात्रा, लघु की एक मात्रा एवं प्लुत की तीन मात्रा होने से यह 8 मात्रा की ताल है जो चतुरश्र जाति की है। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के अनुसार यह चार विभाग की ताल है जिसमें पहले दो–दो मात्रा का विभाग, तीसरा एक मात्रा का एवं अन्तिम विभाग तीन मात्रा का है।

चाचपुट ताल

स्वरूप	ऽ	।	।	ऽ	मात्रा – 6
यथाक्षर	चा	च	पु	ट	
कलाविधि	सं	श	ता	श	
मात्रा रूप	12 ।	3 ।	4 ।	56 ।	

इस ताल का स्वरूप गुरू, लघु, लघु एवं गुरू का है। इसकी मात्रा 6 है एवं यह त्रयश्र जाति की ताल है। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के अनुसार इसमें पहला विभाग दो मात्रा का, दूसरा व तीसरा विभाग एक–एक मात्रा का एवं चौथा विभाग दो मात्रा का है।

षटपितापुत्र ताल

स्वरूप	ऽ।	।	ऽ	ऽ	।	ऽ।	मात्रा–12
यथाक्षर	षट	पि	ता	पु	त्र	क	
कलाविधि	सं	ता	श	ता	श	ता	
मात्रा रूप	123 ।	4 ।	56 ।	78 ।	9 ।	101112	

इस ताल का स्वरूप प्लुत, लघु, गुरू, गुरू, लघु एवं प्लुत का है। लघु, गुरू, एवं प्लुत की मात्रा प्रमाण के अनुसार इसकी मात्रा 12 है। भरत ने नाट्यशास्त्र में इसको मिश्र कहा है क्योंकि चच्चपुट एवं चाचपुट को क्रमशः चतुरश्र एवं त्रयश्र माना है। इस मिश्र का सम्बन्ध ताल के दस प्राण के अर्न्तगत मिश्र जाति से नहीं है क्योंकि उसकी मिश्र जाति में लघु की मात्रा संख्या 7 है। इसको मिश्र इसलिए कहा गया क्योंकि 12 की संख्या 3 एवं 4 जो कि त्रयश्र एवं चतुरश्र का प्रमाण है, दोनों से विभक्त होता है। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के अनुसार यह ताल छः विभाग की ताल है जिसमें पहला एवं अन्तिम विभाग 3–3 मात्रा का, तीसरा एवं चौथा विभाग 2–2 मात्रा का एवं दूसरा एवं पांचवा विभाग एक–एक मात्रा का है।

सम्पक्वेष्टाक ताल

स्वरूप	ऽ।	ऽ	ऽ	ऽ	ऽ।	मात्रा – 12
यथाक्षर	सं	म्प	क्वै	टा	क	
कलाविधि	ता	श	ता	श	ता	
मात्रा रूप	123 ।	45 ।	67 ।	89 ।	101112 ।	

इस ताल का स्वरूप प्लुत, गुरू, गुरू, गुरू एवं प्लुत का है एवं इसकी मात्रा 12 है। यह भी षटपितापुत्र की भांति मिश्र है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति के अनुसार यह ताल पांच विभाग की है। जिसमें पहला एवं अन्तिम विभाग 3–3 मात्रा का एवं दूसरा, तीसरा तथा चौथा विभाग 2–2 मात्रा का है।

उदघट्ट ताल

स्वरूप	ऽ	ऽ	ऽ	मात्रा – 6
यथाक्षर	उद	ध	ट्	
कलाविधि	नि	श	श	
मात्रा रूप	12 ।	34 ।	56 ।	

इसका ताल स्वरूप तीन गुरू का है अतः इसकी मात्रा 6 है। चाचपुट ताल भी 6 मात्रा की ताल है परन्तु स्वरूप भिन्न होने के कारण यह भिन्न ताल है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति के अनुसार यह तीन विभाग की ताल है जिसका प्रत्येक विभाग 2–2 मात्रा का है।

पांच मार्गी तालों में चच्चपुट आठ मात्रा की ताल है। चाचपुट एवं उदघट्ट दोनों छः मात्रा की ताल है, षटपितापुत्र एवं सम्पक्वेष्टाक दोनों बारह मात्रा की ताल है परन्तु ताल स्वरूप में लघु, गुरू एवं प्लुत की स्थिति के अनुसार ताल रचना एक दूसरे से भिन्न है, अतः समान मात्राएं होने पर भी यह दोनों भिन्न–भिन्न ताल हैं। इसी सिद्धान्त के आधार पर समान मात्राओं की भिन्न–भिन्न तालों की रचना संगीत रचना की आवश्यकता के अनुसार हुई, इसकी चर्चा तालों के वर्तमान स्वरूप के सन्दर्भ में की जाएगी। प्रारम्भ में त्रयश्र एवं चतुरश्र ही जाति का प्रयोग किया जाता था। परन्तु बाद में देशी तालों में ताल के विकास के साथ खण्ड एवं मिश्र जाति भी जुड़ गई। चतुरश्र एवं त्रयश्र के संयोग से मिश्र जाति बनी एवं चतुरश्र का खण्ड कर त्रयश्र में जोड़ने से खण्ड जाति बनी। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति इसी जाति पर आधारित है, जिसमें लघु की मात्रा संख्या बदलने से जाति परिवर्तित होती है एवं जाति परिवर्तन से तालों का निर्माण होता है। दक्षिण ताल पद्धति के अनुसार चतुरश्र जाति में लघु की मात्रा संख्या चार, त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात एवं संकीर्ण जाति में नौ है। भरत ने नाट्यषास्त्र में इन पांच मार्गी तालों के प्रयोग का विधान गीतकों एवं निर्गीतों हेतु किए जाने का विवरण दिया है। ध्रुवा में भी मार्गी तालों के प्रयोग होते थे परन्तु ध्रुवा में इन पांच तालों के अतिरिक्त भी तालों के प्रयोग किए गए।

3.5 देशी ताल

मार्गी तालों से ही देशी तालों की रचना हुई। चच्चत्पुट से 12 ताल, चाचपुट से 7 ताल, षटपितापुत्र से 7 ताल, सम्पक्वेष्टाक से 41 ताल तथा उद्घट से 27 तालों के लक्षण दिए गए हैं। देशीतालों का विवरण सर्वप्रथम संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में प्राप्त होता है। इससे पूर्व देशी ताल शब्द का प्रयोग नहीं था। भरत का ग्रन्थ मूल रूप से नाट्य पर आधारित है। संगीत नाट्य का प्रमुख अंग है अतः भरत द्वारा संगीत की विषद विवेचना की गई जो अधिकतर नाट्य के सन्दर्भ में थी। ध्रुवाओं में निश्चित जाति एवं राग का विधान नहीं था। वरन ताल एवं उनके प्रयोग का निश्चित विधान नियत किया गया था। पात्र की प्रकृति एवं चित्त वृति के आधार पर इनके प्रयोग की छूट भरत ने नाट्य प्रयोक्ता को दी। इनमें प्रयोग होने वाली तालों को संगीत रत्नाकर में देशी ताल कहा गया एवं संगीत रत्नाकर में 120 तालों के सम्पूर्ण लक्षण प्राप्त होते हैं।
मार्गी तालों में चतुरश्र एवं त्रयश्र तथा इन दोनों के मेल से मिश्र का ही प्रयोग होता था। देशीतालों का विस्तार खण्ड भेद के आधार पर हुआ। गुरू, लघु एवं प्लुत के खण्ड कर तालों को आवश्यकतानुसार बनाया गया। इनको खण्ड ताल भी कहा गया। मार्गी तालों में लघु का मान निश्चित है अतः गुरू एवं प्लुत का मान भी स्वतः ही निश्चित हो जाता है। देशी तालों में लघु का मान आवश्यकतानुसार परिवर्तित किया जाता है। मार्गी तालों में सबसे छोटी इकाई लघु है जबकि देशी तालों में सबसे छोटी इकाई अणुद्रुत है जिसकी मात्रा का मान 1/4 है। देशी तालों में प्रयुक्त लघु, गुरू, प्लुत, द्रुत एवं अणुद्रुत के संकेत चिन्ह एवं मात्रा का मान निम्न प्रकार से है। इससे प्राचीन तालों को समझने में सहायता मिलेगी।

अंग के नाम	संकेत चिन्ह	मात्रा
लघु	।	1 (एक मात्रा)
गुरू	ऽ	2
प्लुत	ऽ	3
द्रुत	0	1/2
अणुद्रुत	◡	1/4

3/4 मात्रा दिखाने के लिए द्रुत के चिन्ह के ऊपर अणुद्रुत का चिन्ह लगाते हैं अर्थात् ŏ तथा $1\frac{1}{4}$ मात्रा के लिए लघु के ऊपर अणुद्रुत का चिन्ह अर्थात ॑ लगाया जाता है। उपरोक्त अंगों का पारस्परिक मात्रा का अनुपात निम्न प्रकार से है :–

1 द्रुत	2 अणुद्रुत
1 लघु	2 द्रुत
2 लघु	1 गुरू
3 लघु	1 प्लुत

शारंगदेव के संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में देशीतालों के विवरण में एक अंग से लेकर सोलह अंगों तक की ताल है।
एक अंग की ताल निम्न है–

नाम	चिन्ह	मात्रा
द्रुत शेखर	ŏ	3/4 मात्रा
लघु शेखर	॑	$1\frac{1}{4}$ मात्रा
आदि ताल	।	1 मात्रा

सबसे अधिक अंगों वाली ताल चच्चरी ताल है जिसमें सोलह अंग अथवा 24 अंग मान गए।
सोलह अंग की चच्चरी ताल – 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ 0 ऽ
चौबीस अंग की चच्चरी ताल – 00। 00। 00। 00। 00। 00। 00। 00

मार्गी तालों में लघु का विशेष महत्व था लेकिन देशी तालों में द्रुत का भी महत्व है। कुछ देशी ताल केवल द्रुत से ही निर्मित है जैसे – पंचमताल (000), करणपति ताल (0000), षटताल (000000)। देषी तालों में लघु का प्रमाण बदलता रहता है, कहीं चार, कहीं पांच एवं कहीं पर छः का होता है जबकि मार्गी तालों में लघु का प्रमाण पांच हस्व स्वर का है। देशी ताल में लघु के अनुसार अन्य सभी अंगों का नाप भी उनके अनुपात में बदल जाता है। देशी तालों में लघु को मात्रा के सामान्तर अथवा पर्याय माना है जिसका मुख्य एक मात्रा का है। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति में लघु का मान पांच जाति पर आधारित है। चतुरश्र में चार, त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात एवं संकीर्ण में नौ मात्रा का है। केवल उदघट्ट को छोड़कर मार्गी तालों में सशब्द क्रियाओं द्वारा ताल प्रदर्शित की जाती थी। उदघट्ट में निष्काम क्रिया का भी उल्लेख है। देशी तालों में सशब्द एवं निशब्द दोनों क्रियाओं के साथ ताल प्रदर्शित की जाती थी। निशब्द क्रियाओं में ध्वनि नहीं होती है। ये निशब्द क्रियाएं चार बताई गई जो निम्न प्रकार से हैः–

आवाप – इसको पहले अक्षर 'आ' से प्रदर्शित करते हैं एवं हथेली को ऊपर की ओर रखकर अंगुलियों को सिकोड़ने को 'आवाप' कहते हैं।
निष्काम – इसको पहले अक्षर 'नि' से प्रदर्शित करते हैं एवं हथेली को उल्टी कर अंगुलियों को फैलाने को निष्काम कहते हैं। अतः यह आवाप की ठीक उल्टी है।
विक्षेप – इसको पहले अक्षर 'वि' से प्रदर्शित करते हैं एवं हाथ को एक ओर से दूसरी ओर ले जाने को विक्षेप कहते हैं।
प्रवेश – इसको पहले अक्षर 'प्र' से प्रदर्षित करते हैं एवं हाथ को एवं हथेली नीचे की ओर करके अंगुलियों को सिकोड़ने को प्रवेष कहते हैं।

वर्तमान की उत्तर भारतीय ताल पद्धति में केवल एक सशब्द क्रिया ताली एवं दो निशब्द क्रियाएं खाली हाथ हिलाना एवं विभाग कि ताली एवं खाली की मात्रा के अतिरिक्त मात्राओं का अंगुलियों द्वारा

गिनना, का प्रयोग होता है। इसकी चर्चा उत्तर भारतीय ताल के वर्तमान स्वरूप में की जाएगी। मार्गी एवं देशी दोनों में चार मार्गों का प्रयोग किया जाता था। ये चार मार्ग – ध्रुवा, चित्र, वार्तिक एवं दक्षिण थे। भरत ने यद्यपि तीन मार्ग – चित्र, वार्तिक एवं दक्षिण ही कहे थे परन्तु बाद में शारंगदेव ने ध्रुव मार्ग को जोड़कर चार मार्गों का उल्लेख किया एवं इनका प्रयोग बताया। शारंगदेव के अनुसार ध्रुव मार्ग में कला का मान एक मात्रा, चित्र में दो मात्रा, वार्तिक में चार मात्रा एवं दक्षिण में आठ मात्रा का है।

3.6 मार्गी एवं देशी तालों की तुलनात्मक तालिका

मार्गी एवं देशी ताल का भेद निम्न तुलनात्मक तालिका से स्पष्ट हो जाएगाः–

मार्गी ताल	देशी ताल
1. मार्गी संगीत के साथ मार्गी ताल प्रयोग की जाती थी।	1. देशी संगीत के साथ देशी तालों का प्रयोग किया जाता है।
2. मार्गी तालों की संख्या पांच है जो निश्चित है।	2. देशी तालों की संख्या में आवश्यकतानुसार बढ़ोत्तरी होती गई।
3. मार्गी तालों में केवल लघु, गुरू, तथा प्लुत का ही प्रयोग है।	3. देशी तालों में लघु, गुरू तथा प्लुत के अतिरिक्त द्रुत एवं अणुद्रुत का भी प्रयोग है।
4. मार्गी तालों में सबसे छोटी इकाई लघु है।	4. देशी तालों में सबसे छोटी इकाई अणुद्रुत है।
5. मार्गी तालों में लघु का प्रमाण पांच हस्व अक्षर का है।	5. देशी तालों में लघु का प्रमाण आवष्यकतानुसार चार एवं छः का भी हो जाता है।
6. मार्गी तालों में चतुरश्र एवं त्रयश्र जाति का ही प्रयोग है।	6. देशी तालों में अन्य जाति का भी प्रयोग है।

3.7 उत्तर भारतीय तालों का वर्तमान स्वरूप

मार्गी एवं देशी का भेद समाप्त होने के बाद भारतीय संगीत की दो पद्धति – दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति एवं उत्तर भारतीय संगीत पद्धति स्थापित हुई। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति को कर्नाटक संगीत पद्धति भी कहा जाता है। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति के साथ दक्षिण भारतीय ताल पद्धति एवं उत्तर भारतीय संगीत पद्धति के साथ उत्तर भारतीय ताल पद्धति प्रयोग की जाती है। इन दोनों ताल पद्धति का स्वरूप एवं प्रयोग एक दूसरे से भिन्न है। उत्तर भारतीय तालों की रचना विभिन्न संगीत शैलियों एवं संगीत रचनाओं की आवश्यकतानुसार के अनुरूप हुआ। उत्तर भारतीय ताल एक निश्चित मात्राओं की आवृति की होती है जिसमें मात्राओं के निश्चित विभाग होते हैं। विभाग की पहली मात्रा पर ताली एवं खाली होती है। ताली को हाथ से प्रदर्शित ताल देकर की जाती है जो कि सशब्द क्रिया 'शम्पा' के अनुरूप हैं एवं खाली को निषब्द क्रिया – हाथ को एक तरफ हिला कर किया जाता है जो 'विक्षेप' के अनुरूप माना जा सकता है। इसके अतिरिक्त विभाग की अन्य मात्राओं को अंगुली से गिना जाता है। उत्तर भारतीय संगीत में अन्य सषब्द अथवा निशब्द क्रियाओं का प्रयोग नहीं है। ताल को निश्चित स्वरूप प्रदान करने के लिए अवनद्य वाद्य पखावज एवं तबले के पाट वर्ण के आधार पर प्रत्येक मात्रा के साथ बोल निश्चित किये जाते हैं जिसे ताल का ठेका कहा जाता है। ठेके की आवृति की पुनरावृत्ति की जाती है जिससे ताल का स्वरूप स्थापित होता है। अतः एक आवृति में मात्रा की संख्या, विभागों की संख्या, प्रत्येक विभाग में मात्राओं की संख्या, ताली एवं खाली की संख्या एवं ठेका उत्तर भारतीय ताल पद्धति के मुख्य अंग हैं। ताल की संरचना एवं स्वरूप इन्हीं पर आधारित है। किसी भी अंग में परिवर्तन होने से ताल बदल जाती हैं, यही कारण है कि मात्राओं की संख्या समान होने पर भी विभिन्न तालों का निर्माण संगीत की आवश्यकता के अनुसार हुआ।

उत्तर भारतीय तालों में मात्रा समान होने पर, विभाग समान होने पर, विभाग में मात्राओं की संख्या भी समान होने पर, ताली एवं खाली का स्थान भी समान होने पर केवल ठेके के बोलों में अन्तर कर नई तालों का निर्माण किया गया। इन नई तालों के निर्माण का आधार इनका संगीत शैली के साथ प्रयोग एवं लय का प्रयोग था। चौदह मात्रा की तीन तालें – झूमरा, दीपचन्दी एवं आडाचारताल हैं। इन तीनों तालों के प्रयोग भिन्न हैं। झूमरा ताल को विलम्बित ख्याल के साथ, दीपचन्दी को ठुमरी गायन शैली के साथ एवं आडाचारताल को मध्य लय की रचनाओं के लिए प्रयोग किया जाता है। इन तालों के स्वरूप निम्न प्रकार से हैं–

झूमरा ताल मात्रा–14

धिं	ऽधा	तिरकिट।	धिं	धिं	धागे	तिरकिट।
x			2			
तिं	ऽता	तिरकिट।	धिं	धिं	धागे	तिरकिट।
o			3			

दीपचन्दी ताल मात्रा–14

धा	धिं	ऽ।	धा	धा	तिं	ऽ।
x			2			
त	तिं	ऽ।	धा	धा	धिं	ऽ।
o			3			

झूमरा एवं दीपचन्दी ताल की रचना समान है केवल ठेके बोल में अन्तर है।

आडाचारताल मात्रा–14

धिं	तिरकिट।	धि	ना	।	तू	ना	।	कत	ता।	तिरकिट	धि	।	ना	धि	।	धि	ना	।
x		2			0			3		0			4			0		

इस ताल की मात्रा 14 है जो दीपचन्दी एवं झूमरा ताल के समान है परन्तु इसके विभागों की संख्या, विभागों में मात्राओं की संख्या एवं ताली व खाली के स्थान भिन्न हैं।

इसी प्रकार सोलह मात्राओं की चार तालें – तीनताल, तिलवाडा, पंजाबी एवं जततताल प्रचलित हैं, जिनके प्रयोग भिन्न होने के कारण उत्तर भारतीय संगीत में स्थापित है।

तीनताल मात्रा–16

धा	धिं	धिं	धा।	धा	धिं	धिं	धा।
x				2			
धा	तिं	तिं	ता।	ता	धिं	धिं	धा।
o				3			

यह ताल विलम्बित, मध्य एवं द्रुत लय तीनों में प्रयोग की जाती है। अतिद्रुत लय में इसका प्रयोग वादक बड़ी कुषलता से करते हैं।

तिलवाडा ताल मात्रा–16

धा	तिरकिट		धिं	धिं ।	धा	धा	तिं	तिं ।
X					2			
ता	तिरकिट		धिं	धिं ।	धा	धा	धिं	धिं ।
O					3			

यह ताल केवल विलम्बित एवं अतिविलम्बित लय में ही प्रयोग की जाती है जिसका प्रयोग ख्याल गायन शैली के विलम्बित ख्याल के लिए किया जाता है।

पंजाबी ताल मात्रा–16

धा	ऽधिं	ऽक	धा।	धा	ऽधिं	ऽक	धा ।
X				2			
धा	ऽति	ऽक	ता।	ता	ऽधि	ऽक	धा ।
O				3			

इस ताल का प्रयोग मध्य लय में एवं टप्पा व ठुमरी गायन शैली में प्रयोग किया जाता है।

जत ताल मात्रा–16

धा	ऽ	धिं	ऽ ।	धा	धा	तिं	ऽ ।
X				2			
ता	ऽ	धिं	ऽ ।	धा	धा	धिं	ऽ ।
O				3			

इस ताल का प्रयोग चौदह मात्रा की दीपचन्दी की भांति ठुमरी गायन के साथ किया जाता है।

उत्तर भारतीय तालों में ताल की प्रथम मात्रा को X चिन्ह से प्रदर्शित करते हैं। विभाग के क्रम संख्या के आधार पर अन्य विभागों की संख्या नीचे लिखी जाती है। खाली को 0 चिन्ह से प्रदर्षित करते हैं जो कि उपरोक्त तालों से उदाहरण में प्रदर्शित किया गया है।

उत्तर भारतीय तालों का प्रयोग उत्तर भारत के संगीत में प्रयोग होने वाले अवनद्य वाद्य पखावज एवं तबला पर किया जाता है। उत्तर भारतीय शास्त्रीय संगीत में दो शैली – ध्रुपद शैली एवं ख्याल शैली प्रचलित हैं। ध्रुपद शैली के साथ पखावज एवं ख्याल शैली के साथ तबला की संगत की जाती है। अतः तबला एवं पखावज के लिए भिन्न–भिन्न तालों का निर्माण किया गया। पखावज पर प्रयोग की जाने वाली तालों के नाम तबले की तालों से भिन्न है एवं ठेके के बोल भी वाद्य के पाट वर्णों के अनुसार है।

प्राचीन समय में संगीत के आचार्यों द्वारा ताल की व्याख्या एवं इसकी प्रयोग विधि के सम्बन्ध में ताल के प्राण बताए गए है। भरत ने प्राण को ताल के आधारभूत तत्वों के रूप में बताया एवं आठ आधारभूत तत्व – काल, मार्ग, क्रिया, काल अवयव, पाणि, तालभेद, कला एवं यति का उल्लेख किया है। शारंगदेव ने भी ताल के आठ प्राण – काल, क्रिया, मार्ग, कला, लय, यति, ग्रह एवं प्रस्तार बताए। ताल के दस प्राण का उल्लेख सर्वप्रथम नारद कृत संगीत मकरंद में प्राप्त होता है जिसके अनुसार काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति और प्रस्तार ताल के दस प्राण हैं। ताल को साकार रूप में स्थापित करने एवं ताल को जीवन देने के कारण ताल के मूल तत्वों को प्राण कहा गया।

मार्गी एवं देशी तालों की व्याख्या इन्हीं प्राणों के आधार पर की गई। उत्तर भारतीय ताल के वर्तमान स्वरूप एवं प्रयोग में ताल के दस प्राणों का कितना सम्बन्ध है इसके अध्ययन से तालों के वर्तमान स्वरूप को समझने में सहायता मिलेगी।

मार्गी तालों में केवल लघु, गुरू एवं प्लुत का प्रयोग होता था जबकि देशी तालों में इनके अतिरिक्त अणुद्रुत व द्रुत का भी प्रयोग होता था। जिनके आपस के सम्बन्ध की चर्चा पहले की जा चुकी है एवं इनके काल प्रमाणों का भी अध्ययन किया जा चुका है। वर्तमान उत्तर भारतीय तालों में एक मात्रा का कोई निष्चित काल प्रमाण नहीं है तथा लय के घटने एवं बढ़ने से मात्रा का काल प्रमाण भी घटता बढ़ता रहता है।

मार्गी एवं देशी तालों में मार्ग का महत्व था। मार्ग का अर्थ चलने से है अतः मार्ग में बताई गई विधियों के आधार पर काल प्रमाणों का प्रयोग करना ही मार्ग हैं। प्राचीन तालों के लिए चार मार्ग– ध्रुव, चित्र, वार्तिक एवं दक्षिण बताए गए। प्राचीन भारतीय संगीत में 'गुरू' काल प्रमाण को कला कहा गया। ध्रुव मार्ग में कला की एक मात्रा, चित्र मार्ग में गुरू अर्थात् दो मात्रा, वार्तिक में चार मात्रा एवं दक्षिण मार्ग में आठ मात्रा होती है। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति में मार्ग व्यवहार में नहीं है परन्तु फिर भी इन मार्गों की दुगुन, चौगुन एवं अठगुन की लयकारी के सापेक्ष माना जा सकता है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति में तालों के प्रयोग में लयकारी का भी विशेष महत्व है जिसके माध्यम से संगीत में वैचित्र्य एवं आकर्षण उत्पन्न किया जाता है। दुगुन, चौगुन, अठगुन के अतिरिक्त अन्य लयकारीयां जैसे आड, तिगुन, छःगुन, बारह गुन, कुआड एवं बिआड का भी प्रयोग किया जाता है।

वर्तमान उत्तर भारतीय तालों में ग्रह का महत्व है। ताल के दस प्राण में दिए गए समग्रह एवं विषम ग्रह का प्रयोग वर्तमान ताल पद्धति में किया जाता है। ताल की प्रथम मात्रा सम का स्थान है। गायन, वादन एवं नृत्य में एक साथ सम पर आने को समग्रह कहा जाता है जिसका प्रयोग उत्तर भारतीय संगीत पद्धति में किया जाता है। संगीत में वैचित्र्य एवं आकर्षण उत्पन्न करने के उद्देश्य से मुख्य सम से पहले या बाद मे सम प्रदर्षित करने को विषम ग्रह कहा जाता है जिसको क्रमशः अनागत अथवा आसम एवं अतीत ग्रह कहते हैं।

ताल के दस प्राणों में जाति एक प्राण है। जाति को सामान्य अर्थ में वर्ग या श्रेणी के रूप में समझा जा सकता है। मार्गी तालों में चतुरश्र एवं त्रयश्र जाति का ही प्रयोग था परन्तु बाद में देशी ताल में खण्ड, मिश्र एवं संर्कीण जाति का भी प्रयोग होने लगा। दक्षिण भारतीय ताल पद्धति मुख्यतः पांच जाति– चतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड, मिश्र एवं संकीर्ण पर आधारित है। लघु का अक्षरकाल चतुरश्र में चार, त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात एवं संकीर्ण में नौ का है। दक्षिण भारतीय संगीत में सात मूल तालें– ध्रुव, मठ, रूपक, झम्प, त्रिपुट अठ एवं एक हैं। जाति परिवर्तन से तालों की संख्या 7X5=35 हो जाती है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति में जाति का प्रयोग स्पष्ट नहीं है। तालों के तालखण्ड और उनके वजन के आधार पर बनने वाले छन्द पर ही उत्तर भारतीय ताल पद्धति आधारित है। कहरवा एवं तीनताल, पंजाबी, तिलवाडा एवं जत को चतुरश्र जाति के अन्तर्गत रखा जा सकता है क्योंकि इन तालों का प्रत्येक विभाग चार मात्राओं का है। इसी प्रकार दादरा ताल के प्रत्येक विभाग तीन मात्राओं का होने के कारण दादरा त्रयश्र जाति के अन्तर्गत कही जा सकती है। झपताल की रचना 2+3+2+3 की है अतः इसको खण्ड जाति एवं रूपक व झूमरा, दीपचन्दी जिनकी सरंचना क्रमशः 3+2+2 एवं 3+4+3+4 की हैं, मिश्र जाति के अर्न्तगत आती है। यह केवल जाति को समझने के लिए ही हैं वरन इसका कोई स्पष्ट प्रयोग नहीं है। ताल की रचनाओं में चौगुन, तिगुन, पंचगुन, छःगुन एवं सतगुन का प्रयोग किया जाता है एवं इनकी रचनाओं को क्रमशः चतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड, त्रयश्र एवं मिश्र जाति की रचनाओं से नामकरण कर दिया जाता है।

लय ताल का आधार है। प्राचीन ताल पद्धति के सन्दर्भ में लय तीन प्रकार – विलम्बित, मध्य एवं द्रुत की थी एवं इनका ही प्रयोग ताल के लिए किया जाता था। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति में भी इन तीन लयों का प्रयोग किया जाता है। परन्तु संगीत शैलियों के विकास के साथ विलम्बित लय के साथ अतिविलम्बित एवं द्रुत के साथ अतिद्रुत लय जुड़ गई। गायन में तराना एवं तन्त्र वाद्य में झाला अतिद्रुत लय में प्रयोग होने लगा है।

समन्वित रूप में लय के विभिन्न प्रयोग को 'यति' कहा गया जो कि ताल का एक प्राण है। संगीत रत्नाकर के अनुसार यति तीन– समा, स्त्रोगता एवं गोचुच्छा हैं। परन्तु बाद में मृदंगा एवं पिपिलिका यति का प्रयोग भी होने लगा। उत्तर भारतीय ताल पद्धति की रचना 'गत' में यति के प्रयोग मिलते हैं। विभिन्न यतियों के आधार पर विभिन्न गतों की रचना की गई। ताल के दस प्राण में वर्णित प्रस्तार विधि के द्वारा प्राचीन तालों का प्रस्तार किया जाता था परन्तु वर्तमान ताल पद्धति में उक्त प्रस्तार का कोई सम्बन्ध नहीं है। उत्तर भारतीय ताल पद्धति की रचनाओं, कायदा, पेशकार, रेला, गत कायदा का प्रस्तार किया जाता है जो रचनाओं के बोल को उलट पलट कर किया जाता है जिनको पल्टा कहा जाता है। बोलों की बांट भी रचनाओं के प्रस्तार के अर्न्तगत की जाती है।

प्राचीन भारतीय संगीत में ताल को सशब्द, निशब्द क्रियाओं एवं घन वाद्य के माध्यम से प्रदर्शित किया जाता था। बाद में घन वाद्य का स्थान अवनद्य वाद्य ने ले लिया। दक्षिण भारतीय संगीत में अभी भी मंजिरे (घनवाद्य) का प्रयोग होता है परन्तु इसका प्रयोग किसी अन्य अवनद्य वाद्य मृदंग के साथ होता है। घन वाद्य लय एवं छन्द प्रदर्शित करने में आज के सन्दर्भ में सक्षम है परन्तु ताल के लिए नहीं है। भक्ति संगीत में मंजीरे का प्रयोग ताल के खटका देने के लिए किया जाता है परन्तु इसके साथ अवनद्य वाद्य ढोलक व तबला अथवा पखावज का होना अनिवार्य है। उत्तर भारतीय संगीत के शास्त्रीय स्वरूप में घनवाद्य का कोई स्थान नहीं है वरन लय एवं ताल दोनों ही अवनद्य वाद्य तबला व पखावज पर प्रदर्षित की जाती है। वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति में ताल के ठेके का महत्वपूर्ण स्थान है जिससे ताल स्वरूप स्थापित होता है एवं ताल की पहचान होती है। प्रचलित तालें जैसे – तीनताल, एकताल, झपताल, रूपक, दादरा, कहरवा, आडाचारताल, झूमरा, दीपचन्दी, तिलवाडा, पंचमसवारी, चारताल, धमार, तीव्रा आदि तालों के ठेके निष्चित हैं। अप्रचलित तालें जैसे 9 मात्रा, 11 मात्रा, $8\frac{1}{2}$ मात्रा $9\frac{1}{2}$ मात्रा आदि तालों के ठेके वादक संगीत रचना के अनुसार बना लेता है जिसकी छूट वर्तमान संगीत में दे दी गई है।

ताल ने एक लम्बी विकास यात्रा की है जिसके फलस्वरूप उत्तर भारतीय तालों का वर्तमान स्वरूप प्राप्त है। वर्तमान ताल पद्धति के मूल सिद्धान्त एवं मूल स्वरूप प्राचीन ताल पद्धति से सम्बद्ध एवं प्रेरित हैं। यद्यपि उनके नामकरण एवं प्रयोग विधि में अन्तर है। भारतीय संगीत कई धर्म एवं संस्कृति से गुजरा जिसके फलस्वरूप हमें आज संगीत का वर्तमान स्वरूप प्राप्त है।

अभ्यास प्रश्न

1. मार्गी तालों की संख्या लिखिए।
2. मार्गी तालों में किन जाति का प्रयोग किया जाता है?
3. मार्गी तालों की सबसे छोटी इकाई कौन सी है?
4. मार्गी तालों में लघु का प्रमाण क्या है?
5. देशी तालों की सबसे छोटी इकाई क्या है?
6. सशब्द क्रियाओं के नाम लिखिए।
7. निशब्द क्रियाओं के नाम लिखिए।
8. भरत के अनुसार ताल के कितने प्राण थे?
9. वर्तमान में ताल के कितने प्राण प्रचलन में हैं?
10. संगीत मकरंद ग्रन्थ के रचियता कौन थे?
11. वर्तमान उत्तर भारतीय तालों के मुख्य अंग क्या हैं?

3.8 सारांश

प्राचीन भारतीय संगीत में मार्गी संगीत एवं देशी संगीत की दो धाराएं विद्यमान थी एवं इनके साथ प्रयोग हेतु क्रमशः मार्गी ताल एवं देशी तालों का निर्माण किया गया। इस इकाई में आपने मार्गी संगीत एवं देशी संगीत के भेद एवं मार्गी ताल व देशी ताल का अध्ययन किया एवं इनके विषय में जान गए हैं। ताल संगीत का प्राण है एवं संगीत का आवश्यक अंग है जिससे संगीत को व्यवस्थित किया जाता है। सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिवर्तन के साथ संगीत में भी परिवर्तन स्वाभाविक था एवं ताल भी संगीत की आवष्यकतानुसार परिवर्तित होती गई। वर्तमान उत्तर भारतीय तालों के स्वरूप एवं इनके संगीत में प्रयोग का सम्बन्ध प्राचीन ताल पद्धति से सीधा नहीं है वरन प्राचीन ताल पद्धति से प्रेरित अवष्य है। इस इकाई के माध्यम से आप वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के विषय एवं इनका प्राचीन भारतीय तालों से सम्बन्ध के विषय में जान गए हैं। प्राचीन संगीत शास्त्रीयों ने ताल के स्वरूप एवं इनके प्रयोग विधि के लिए तालों के प्राण निश्चित किए थे। इस इकाई के अध्ययन के माध्यम से आप ताल के प्राणों का वर्तमान उत्तर भारतीय ताल से सम्बन्ध भी जान गए हैं।

3.9 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

1. पांच
2. चतुरश्र एवं त्रयश्र
3. लघु
4. पांच हस्व अक्षर
5. द्रुत
6. शम्पा, ताल एवं सन्निपात
7. आवाप, निष्काम, विक्षेप एवं प्रवेष
8. आठ
9. दस
10. नारद
11. मात्रा, विभाग की संख्या, विभाग में मात्राओं की संख्या, ताली व खाली एवं ताल का ठेका

3.10 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेन, डॉ0 अरूण कुमार, *उत्तर भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन,* मध्यप्रदेश ग्रंथ आकादमी, भोपाल।
2. चौधरी, सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और लय विधान, कृष्ण बदर्स, अजमेर।
3. शुक्ला, डा0 योगमाया, *तबले का उद्गम, विकास और वादन शैलियां,* हिन्दी माध्यम कार्यान्वयन निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, दिल्ली।

3.11 निबन्धात्मक प्रष्न

1. मार्गी तालों के विषय में लिखिए।
2. मार्गी एवं देशी तालों का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कीजिए।
3. वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति पर प्रकाश डालिए एवं इसकी तुलना प्राचीन ताल पद्धति से कीजिए।

इकाई 4 – ताल के प्राण (काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति व प्रस्तार) का विस्तृत अध्ययन एवं वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता

4.1 प्रस्तावना
4.2 उद्देश्य
4.3 ताल के दस प्राण
4.4 काल
4.5 मार्ग
4.6 क्रिया
4.7 अंग
4.8 ग्रह
4.9 जाति
4.10 कला
4.11 लय
4.11.1 लयकारी
4.12 यति
4.13 प्रस्तार
4.14 ताल के प्राण का वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता
4.15 सारांश
4.16 अभ्यास प्रश्न के उत्तर
4.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची
4.18 निबन्धात्मक प्रश्न

4.1 प्रस्तावना

प्रस्तुत इकाई एम0पी0ए0एम0टी0–601 पाठ्यक्रम की चौथी इकाई है। इससे पूर्व की इकाईयों में आपने उत्तर भारत के अवनद्य वाद्य पखावज एवं तबले का अध्ययन किया जिससे आप इन वाद्यों की उत्पत्ति, विकास व उपयोगिता के विषय में जान गए हैं। इन्हीं इकाइयों के माध्यम से आप पखावज की वादन विधि एवं पखावज व तबले के विभिन्न घरानों एवं इनकी वादन शैलियों के विषय में भी जान गए हैं। आप मार्गी ताल, देशी ताल एवं वर्तमान उत्तर भारतीय ताल पद्धति के विषय में भी जान चुके हैं।

इस इकाई में ताल के प्राण को विस्तार से समझाया गया है। ताल को साकार रूप में स्थापित करने एवं ताल को जीवन देने के कारण ताल के मूल तत्वों को प्राण कहा गया। इस इकाई के माध्यम से आप प्रत्येक प्राण का मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में अध्ययन करेंगे तथा साथ ही वर्तमान प्रचलित तालिपि के सन्दर्भ में भी जानेंगे। ताल के दस प्राण की वर्तमान में उपयोगिता के विषय में भी इस इकाई में चर्चा की जाएगी।

इस इकाई के अध्ययन के उपरान्त आप ताल के प्राणों को समझ सकेंगे। आप ताल पद्धति में इनके महत्व से भी परिचित हो सकेंगे। आप वर्तमान में इनकी उपयोगिता को भी जान सकेंगे। इससे आप को प्राचीन ताल पद्धति तथा उसके व्यवहार के विषय में भी ज्ञान हो सकेगा तथा विभिन्न प्रकार की बन्दिशों की रचना हेतु प्रेरित होंगे।

4.2 उद्देश्य

इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप :–

1. ताल के दस प्राणों को जान सकेंगे।
2. मार्गी तथा देशी तालों के व्यवहार को जान सकेंगे।
3. प्रत्येक प्राण की उपयोगिता को मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में समझ सकेंगे।
4. वर्तमान ताल पद्धति में दस प्राणों की उपयोगिता समझ सकेंगे।

4.3 ताल के दस प्राण

संगीत की प्रतिष्ठा ताल पर होती है अर्थात संगीत का आधार ताल ही है तथा ताल का आधार प्राचीन संगीत के ऋषियों द्वारा स्थापित तत्व हैं। ये तत्व ही ताल के प्राण हैं जो कि दस हैं। जिस प्रकार मानव में चेतन तथा अचेतन में प्राण ही है जो मानव को गति प्रदान करता है तथा प्राण निकल जाने पर मानव शरीर का भी अन्त हो जाता है, अतः प्राण तत्व मानव जीवन के लिए आवश्यक तत्व है। उसी प्रकार ताल हेतु भी प्राण आवष्यक तत्व है। प्राचीन भारतीय परम्पराओं के आधार पर मानव में निहित प्राण के दस भेद हैं। इसी से प्रेरित होकर ताल हेतु भी दस प्राण निश्चित किए गए। संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में एला प्रबन्ध के अन्तर्गत एला में पदों के दस प्राण का उल्लेख किया गया है। इस प्रकार भारतीय ऋषियों द्वारा भारतीय ताल के तत्वों को भारतीय योग दर्शन तथा अध्यात्म से जोड़ा गया जिससे संगीत के प्रति आस्था एवं श्रद्धा बने एवं संगति में पवित्रता बनी रहे।

भरत ने ताल के तत्वों को प्राण न कह कर ताल के तत्व के रूप में प्रस्तुत किया। भरत ने इन तत्वों की संख्या आठ बताई जिसके अनुसार काल, मार्ग, क्रिया, काल अवयव, पाणि, ताल भेद, कला एवं यति हैं। संगीत मकरद में सर्वप्रथम ताल के दस प्राणों की चर्चा निम्न श्लोक के माध्यम से की की गई :–

" काल मार्ग क्रियांगाणि ग्रहोजातिः कला लयः।
यति प्रस्तारकश्चेति तालप्राणा दश स्मृताः।।"

इसके अनुसार ताल के दस प्राण काल, मार्ग, क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, कला, लय, यति तथा प्रस्तार हैं।

भरत ने अंग नाम से कोई चर्चा नहीं की बल्कि इसको काल अवयव की संज्ञा दी। भरत ने जाति की जो व्याख्या की थी वह जाति काल के सन्दर्भ में थी। ताल के सन्दर्भ में वही जाति को उन्होंने ताल भेद के रूप में प्रकट किया।

ग्रह शब्द का भी भरत के नाट्यशास्त्र में ताल तत्वों के सम्बन्ध में प्रयोग नहीं किया गया है। इसके लिए भरत द्वारा पाणि शब्द प्रयोग किया गया। प्रस्तार का भी उल्लेख भरत ने नहीं किया वरन दो मूल मार्गी तालें चच्त्पुट तथा चाचपुट के अंगों का मंजन कर नई तालों की उत्पत्ति माना है।

मध्यकाल के ग्रन्थ संगीत दर्पण, संगीत परिजात में भी उन्हीं ताल के दस प्राणों का उल्लेख किया गया जो कि संगीत मकरद के ताल के दस प्राण हैं तथा वर्तमान में भी ये ही दस प्राण मान्य हैं जिनकी व्याख्या आगे की जाएगी।

4.4 काल

संगीत में काल को निश्चित करने के लिए ताल की रचना की। जिस प्रकार असीमित काल को सेंकेड, मिनिट, घण्टा, दिन, सप्ताह, माह व वर्ष में निष्चित किया उसी प्रकार संगीत में ताल का मुख्य प्रयोज्य काल को व्यवस्थित कर संगीत को स्थायित्व प्रदान करना था। अतः ताल रचना में काल मुख्य एवं अनिवार्य तत्व है। सभी ग्रन्थों में ताल के दस प्राण में काल का क्रम पहला है। काल गणना हेतु 425 पक्षियों की ध्वनि का भी सहारा लिया गया। काल गणना के लिए क्षण, लव, काष्ठा, निमेष, कला, अुणद्रुत, दुत, लघु, गुरू, तथा प्लुत का आधार लिया तथा तालों हेतु इनसे मात्रा तथा मात्रांश का निर्धारण हुआ। 425 पक्षियों की आवाज से निम्न प्रकार काल निर्धारण कियाः–

नेवला की आवाज	–	1/2 मात्रा	द्रुत
नीलकण्ठ की आवाज	–	1 मात्रा	लघु
कौए की आवाज	–	2 मात्रा	गुरू
मयूर की आवाज	–	3 मात्रा	प्लुत

संगीत दामोदर ग्रन्थ में काल निर्णय श्री कृष्ण की बंशी की ध्वनि से किया है जिसके अनुसार कृष्ण जब अपनी बंशी की ध्वनि से राधा को पुकारते थे तो उसका काल प्लुत अथवा तीन मात्रा का होता था। इसके अतिरिक्त कृष्ण की बंशी द्रुत, लघु तथा गुरू के लिए निश्चित थी। द्रुत हेतु पारिजात बंशी, लघु हेतु कनकरेखा बंशी तथा गुरू हेत शशिकला बंशी थी।

समयसार ग्रन्थ में उल्लेख है कि 100 कमलपत्रों को एक के ऊपर एक रखकर सुई से छेद करने का काल एक क्षण है। क्षण का काल निश्चित होने पर अन्य का अनुपात काल निम्न प्रकार हैः–

8 क्षण	–	1 लव
8 लव	–	1 काष्ठा
8 काष्ठा	–	1 निमेष
8 निमेष	–	1 कला
2 कला	–	1 त्रुटि अथवा अणुद्रुत
2 अणुद्रुत	–	1 द्रुत
2 द्रुत	–	1 लघु
2 लघु	–	1 गुरू
3 लघु	–	1 प्लुत
4 लघु	–	1 काकपद

द्रुत, लघु अथवा गुरू में से किसी को भी काल अवधि अपनी क्षमता के आधार पर निश्चित करने से, अन्य की उसी अनुपात में काल अवधि निश्चित हो जाएगी। लघु का मान एक मात्रा का माना गया है इसमें वैज्ञानिक आधार लेते हुए एक मात्रा का काल यदि एक सैकेंड माना जाय तो सभी का काल निश्चित हो जाएगा, जिससे संगीत के काल के निरूपण में स्थिरता आ जाएगी। क्योंकि 100 कमलपत्रों को प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार ही भेद पाएगा जिस कारण काल गणना में प्रामाणिकरण नहीं हो पाएगा। पांच अक्षरकाल के उच्चारण काल को 1 लघु अथवा 1 मात्रा का काल कहा गया है। इसमें भी प्रत्येक व्यक्ति अपनी क्षमता अनुसार उच्चारण कर सकता है तथा उच्चारण काल पृथक हो सकता है। अतः काल के निश्चित निर्धारण के लिए सैकेण्ड ही सबसे उचित होगा जो सर्वमान्य होगा तथा संगीत में काल निर्धारण को निष्चितता प्रदान करेगा। संगीत हेतु काल निर्धारण अणुद्रुत, द्रुत, लघु, गुरू, प्लुत तथा काकपद आदि से ही किया जाता है। लघु गुरू का आधा, द्रुत लघु का आधा तथा अणुद्रुत दुत का आधा है। प्लुत लघु का तीन गुना तथा काकपद लघु का चार गुना है। अतः इनमें मात्रा में परिवर्तन के पश्चात लघु की मात्रा एक होने पर द्रुत 1/2 मात्रा, अणुद्रुत 1/4 मात्रा, गुरू की दो मात्रा, प्लुत की तीन मात्रा तथा काकपद की चार मात्रा हुई।

4.5 मार्ग

मार्ग का स्थान ताल के दस प्राण में दूसरा है। मार्ग का साधारण अर्थ रास्ता है। किसी भी मार्ग से दो स्थानों की दूरी को मापा जा सकता है, उसी प्रकार ताल में मार्ग द्वारा ताल की लम्बाई का ज्ञान होता है। अर्थात ताल की एक आवृत्ति कितनी लम्बाई की है, मार्ग द्वारा इसका ज्ञान हो जाता है। निश्चित काल में कला और पात के समूह को मार्ग कहते हैं। भरत ने तीन मार्गों का उल्लेख किया है चित्त, वार्तिक तथा दक्षिण। शांरगदेव ने इन तीन मार्गों के अतिरिक्त ध्रुव मार्ग भी बताया है। मानसोल्लास ग्रन्थ में ध्रुव मार्ग को चित्रतर कहा गया है। अतः इसके अनुसार चार मार्ग स्थापित किए गए ध्रुव अथवा चित्र, चित्त, वार्तिक एवं

दक्षिण। ध्रुव मार्ग का प्रयोग स्वतंत्र रूप से मार्गी तालों में नहीं होता है बल्कि मार्गों के अन्तर्गत भेद करते समय या फिर मागधी गीति में ही इसका प्रयोग होता था। भरत के अनुसार चित्र की दो मात्रा, वार्तिक की चार मात्रा तथा दक्षिण की आठ मात्रा की कला मानी। बाद में ध्रुव मार्ग को भी सम्मिलित किया गया जिससे एक मात्रा की कला निश्चित की गई। निशब्द एवं सशब्द क्रियाओं का विश्रान्ति काल कितना होगा यह मार्ग पर ही आधारित होता है। ध्रुव मार्ग में निशब्द क्रियाएं नहीं होती हैं अतः इसको मार्गी संगीत में प्रयोग नहीं किया गया है। चार मार्ग को आप निम्नलिखित उदाहरण से समझ सकेंगेः–

ध्रुव मार्ग – एक मात्रा कला अथवा एकमात्रिक कला तालाघात	×
चित्र मार्ग – दो मात्रा कला अथवा द्विमात्रा कला	1 2 × o
वर्तिक मार्ग – चार मात्रा कला अथवा चतुमात्रिक कला	1 2 3 4 + 0 0 0
दक्षिण मार्ग – आठ मात्रा कला अथवा अष्टमात्रिक कला	1 2 3 4 5 6 7 8 + 0 0 0 0 0 0 0

ऊपर के उदाहरण से स्पष्ट है कि ध्रुव मार्ग एक मात्रा की कला है तथा एक मात्रा में कोई विश्रान्ति नहीं है। चित्र मार्ग में एक मात्रा में एक मात्रा का विश्राम है अतः दो मात्रा की कला है। वार्तिक मार्ग में एक मात्रा में 3 मात्रा का विश्राम है अतः चार मात्रा की कला है तथा दक्षिण में एक मात्रा में सात मात्रा का विश्राम है अतः आठ मात्रा की कला है। उपर के विश्राम कला के अनुसार मार्ग से ताल की लम्बाई एवं गति भेद का भी ज्ञान होता है। चित्र मार्ग में द्रुत गति, वार्तिक में मध्य गति तथा दक्षिण में विश्राम अधिक होने पर विलम्बित अथवा धीमी गति का बोध होता है। ध्रुव मार्ग में गति, चित्र मार्ग की गति से दुगुनी होगी अतः इसको अति द्रुत कह सकते हैं। बाद के ग्रन्थों में चित्र के अन्य दो भेद चित्रतर तथा चित्रतम भी बताए गए। चित्रतर ही ध्रुव है अथवा इसका आधा स्वरूप चित्रतम होगा जिसको अति–अति द्रुत गति कहा जा सकता है। चच्चत्पुट मार्गी ताल का उपरोक्त मार्गी से स्वरूप निम्न प्रकार का होगा। लघु का अक्षर काल 5 का माना गया।

चच्चत्पुट चित्रमार्ग	S	S	I	S'
अक्षर काल	**10**	**10**	**5**	**15**
मात्रा	**2**	**2**	**1**	**3**
चच्चत्पुट वार्तिक मार्ग	S	S	1	S'
अक्षर काल	**20**	**20**	**10**	**30**
मात्रा	**4**	**4**	**2**	**6**
चच्चत्पुट दक्षिण मार्ग	S	S	1	S'
अक्षर काल	**40**	**40**	**20**	**60**
मात्रा	**8**	**8**	**4**	**12**

मार्गी ताल में ध्रुव मार्ग का प्रयोग नहीं किया जाता था।

वर्तमान सन्दर्भ में जबकि विलम्बित, अतिविलम्बित, मध्य, द्रुत तथा अतिद्रुत गति का प्रयोग होने लगा है तो मार्ग के सापेक्ष दक्षिण मार्ग को अति विलम्बित, वार्तिक मार्ग को विलम्बित, चित्र मार्ग को मध्य, ध्रुव अथवा चित्र को द्रुत तथा चित्रतर एवं चित्रतम को अति द्रुत गति का कहा जा सकता है।

एकल गायन के विलम्बित ख्याल में दक्षिण मार्ग, मध्य लय की रचना में वार्तिक तथा झाला एवं तराना में ध्रुव मार्ग का प्रयोग किया जाता है।

एक ताल के ठेके को तीन मार्ग में निम्न प्रकार से प्रदर्शित करेंगेः–

एकताल ध्रुव मार्ग :–

धिं	धिं।	धागे	तिरकिट।	तू	ना ।	क	त्ता ।	धागे	तिरकिट।	धि	ना।
×		0		2		0		3		4	

एकताल चित्र मार्ग :–

धिं ऽ	धिं ऽ।	धा गे	तिर किट।	तू ऽ	ना ऽ।	क ऽ	ता ऽ।	धा गे	तिर किट।	धी ऽ	नाऽ।
×		0		2		0		3		4	

एकताल वार्तिक मार्ग :–

धिंऽऽऽ	धिंऽऽऽ।	धाऽगेऽ	तिरकिट।	तूऽऽऽ	नाऽऽऽ।
×		0		2	
कऽऽऽ	त्ताऽऽऽ।	धाऽगेऽ	तिरकिट।	धीऽऽऽ	नाऽऽऽ।
0		3		4	

एकताल दक्षिण मार्ग :–

धिंऽऽऽऽऽऽ	धिंऽऽऽऽऽऽ।	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ।	तूऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽ।
×		0		2	
कऽऽऽऽऽऽ	त्ताऽऽऽऽऽऽ।	धाऽऽऽगेऽऽऽ	तिऽरऽकिऽटऽ।	धीऽऽऽऽऽऽ	नाऽऽऽऽऽऽ।
0		3		4	

प्राचीन संगीतकारों ने पहले ही गति के अतिविलम्बित, विलम्बित, मध्य, द्रुत एवं अतिद्रुत भेद की कल्पना कर ली थी तथा वर्तमान संगीत में इन सभी गति भेदों का प्रयोग हो रहा है।

4.6 क्रिया

वैदिक कालीन संगीत से गायन वादन के साथ हाथ से ताल देने की प्रथा रही है। वाजसनेयी संहिता में हाथ से ताल देने वाले को गणक कहा है। हाथ से ताल दिखाने वाले का विशेष महत्व होता था। वीणा वादन तथा नृत्य के साथ भी हाथ से ताल देने वाले को नियुक्त किया जाता था। हाथ से ताल प्रदर्शित करने को क्रिया कहा गया। क्रिया का अर्थ सामान्य तौर पर करने से है। संगीत में काल का माप क्रिया के द्वारा ही किया जाता है। प्राचीन समय में काल को प्रकट करने के लिए घन वाद्य का भी प्रयोग किया जाता था। हाथ से ताल देने की क्रिया दो प्रकार की है सशब्द एवं निशब्द। सशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई दे तथा निशब्द वे क्रिया है जिसमें ध्वनि सुनाई न दे। सशब्द क्रियाओं को शम्यादि तथा निशब्द क्रियाओं को आवापादि की संज्ञा दी गई। इन क्रियाओं के द्वारा ताल स्थापित की जाती थी जिससे गायक, वादक तथा नृत्यकारों को प्रस्तुति में सहायता मिलती थी। सषब्द तथा निषब्द दोनों ही क्रियाओं के संयोग से ताल प्रकट होती है। इन दोनों का काम काल विभाजन का है। मार्गी तालों के मूल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया ही रहती है तथा निशब्द क्रिया उसके विस्तार को प्रकट करती है।

एक सशब्द क्रिया से दूसरी सशब्द क्रिया के मध्य का समय अथवा कालमान निशब्द क्रिया के द्वारा ही प्रकट किया जाता है। अतः ताल को प्रदर्शित करने में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं का महत्व है। इन क्रियाओं को एक साधारण उदाहरण से भी समझा जा सकता है कि यदि किसी व्यक्ति से कोई प्रश्न पूछा जाए और वह उसका उत्तर बोलकर दे तो वह क्रिया सशब्द क्रिया होगी और यदि उसका उत्तर संकेत मात्रा से दे तो वह निशब्द क्रिया कहलाएगी।

सशब्द क्रिया – ध्वनियुक्त क्रिया सशब्द क्रिया है तथा यह चार प्रकार की होती है।
1. **शम्या** – दाहिने हाथ से ताली देना।
2. **ताल** – बाएं हाथ से ताली देना।
3. **सन्निपात** – दोनों हाथ से ताली देना।
4. **ध्रुवा** – हाथ से चुटकी बजाकर नीचे की ओर लाना।

निशब्द क्रिया – ध्वनि रहित क्रिया निशब्द क्रिया है तथा यह भी चार प्रकार की हैं।
1. आवाप – हाथ से उपर उठाकर अंगुलियों को सिकोड़ना।
2. निष्काम – नीचे की ओर अंगुलियों को फैलाना।
3. विक्षेप – उठे हाथ की अंगुलियों को फैलाकर दक्षिण की ओर गिराना।
4. प्रवेशक – अंगुलियों को झुकाकर सिकोड़ना।

सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं के करने के ढंग को कलाविधि कहा गया है। इन क्रियाओं को प्रदर्शित करने के लिए क्रियाओं के नाम का पहला अक्षर संकेत के रूप में प्रयोग किया जाता है जो निम्न प्रकार है।

क्रिया के नाम	–	**संकेत**
शम्या	–	श अथवा शं
ताल	–	ता
ध्रुवा	–	ध
सन्निपात	–	सं
आवाप	–	आ
निष्काम	–	नि
विक्षेप	–	वि
प्रवेषक	–	प्र

चच्चपुट, चाचपुट तथा उदघट्ट ताल में क्रियाओं का प्रदर्शन निम्न प्रकार से होगा।

चच्चत्पुट	**चाचपुट**	**उदघट्ट**
ऽ ऽ । ऽ'	ऽ । । ऽ	ऽ ऽ ऽ
सं ष ता ष	**सं श ता श**	**नि श श**

चच्चत्पुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा, चाचपुट में क्रियाओं का क्रम सन्निपात, शम्या, ताल, शम्या का होगा तथा उदघट में क्रियाओं का क्रम निष्काम, शम्या, शम्या का होगा।

चच्चत्पुट तथा चाचपुट तालों की कलाविधि एक जैसी बताई गई है। सशब्द एवं निशब्द क्रियाओं की परिपाटि वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत में देखी जाती है जिसमें कलाकार प्रस्तुति के साथ से ताल देता है अथवा मंच पर बैठे कलकारों में से कोई भी हाथ से ताल देता है। अलग से हाथ से ताल देने वाले की आवष्यकता नहीं होती है। वर्तमान के उत्तर भारतीय संगीत में भी ताल को हाथ से प्रदर्शित करने के लिए सशब्द एवं निशब्द क्रिया की जाती है। ताल में सम एवं ताली सशब्द क्रिया तथा खाली निशब्द क्रिया होती है। भातखण्डे लिपि पद्धति में सम को ×, ताली को अंक तथा खाली को 0 संकेत से प्रकट करते हैं।

4.7 अंग

काल प्राण के अन्तर्गत काल खण्डों की चर्चा की गई है। सूक्ष्म काल खण्ड, कला, काष्ठा, निमेष आदि के संयोग से अंग की रचना होती है। भरत ने मार्गी तालों के उपयोग लिए तीन अंग लघु, गुरू तथा प्लुत ही उपयोगी बताए हैं। दो या दो से अधिक अंगों के संयोग से ताल की रचना होती है। मार्गी ताल चच्च्पुट ऽ ऽ । ऽ′ की रचना लघु, गुरू, प्लुत के संयोग से हुई है। एक अंग से ताल की परिकल्पना नहीं की जा सकती है परन्तु अपवाद स्वरूप संगीत रत्नाकर में दी गई 120 ताल में से आदि ताल, करूण ताल तथा एकताली एक अंग की तालें हैं। वर्तमान में दक्षिण भारतीय संगीत की सात मूल तालों में एकताल भी एक अंग की ताल है। उत्तर भारतीय संगीत में एक अंग की कोई ताल नहीं है। भरत ने केवल लघु, गुरू तथा प्लुत अंगो का ही प्रयोग किया था परन्तु उनके बाद नन्दिकेश्वर ने अपने ग्रन्थ भरतार्णव में द्रुत, काकपद तथा विराम का प्रयोग देशी तालों में किया है। विराम का प्रयोग लघु एवं द्रुत अंग के साथ ही किया जाता है– लघु विराम एवं द्रुत विराम। विराम का स्वतंत्र रूप में कोई अस्तित्व नहीं है। बाद में अणुद्रुत का भी प्रयोग होने लगा। इन अंगों के संकेत चिन्ह तथा मात्रा की तालिका निम्न प्रकार से हैः–

अंग	संकेत	मात्रा
अणुद्रुत	अर्धचन्द्र	1/4
द्रुत	0 पूर्णचन्द्र	1/2
द्रुत विराम	0 अथवा 0	3/4
लघु	। (खडी रेखा)	1
लघु विराम	।	$1\frac{1}{4}$
गुरू	ऽ	2
प्लुत	ऽ′	3
काकपद	+	4

मार्गी ताल तथा देशी ताल को इन्हीं अंगो से प्रकट किया जाता था। दक्षिण भारतीय संगीत पद्धति में भी तालों को अंगों से प्रकट किया जाता है परन्तु उत्तर भारतीय संगीत में तालों को प्रदर्शित करने के उपरोक्त अंगों का प्रयोग नहीं किया जाता बल्कि मात्रा एवं विभागों द्वारा ताल प्रदर्शित की जाती है। जैसे तीनताल–

धा	धिं	धिं	धा	धा	धिं	धिं	धा	धा	तिं	तिं	ता	ता	धिं	धिं	धा
×				2				0				3			

तीनताल को अंको के रूप में निम्न प्रकार से प्रकट किया जा सकता है।

4+4+4+4	1	5	9	13
	×	2	0	3

उपरोक्त से तीनताल में चार–चार विभाग, प्रथम मात्रा पर सम, पांचवी मात्रा पर दूसरी ताली, नौवीं मात्रा पर खाली तथा तेरहवीं मात्रा पर तीसरी तथा अन्तिम ताली है। तीनताल को अंग भेद के अनुसार + + + + रूप से प्रदर्शित करेंगे। अर्थात तीनताल चार काकपद की चार अंगों की ताल है।

कुछ प्रचलित तालों को अंगों के रूप में प्रदर्शित किया जा रहा है। कर्नाटक ताल पद्धति में भी अंग द्वारा ही ताल प्रदर्शित की जाती है।

झपताल	–	ऽ ऽ′ ऽ ऽ′	गुरू प्लुत गुरू प्लुत	मात्रा	= 10
एकताल	–	ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ ऽ	छः गुरू	मात्रा	= 12
रूपक	–	ऽ′ ऽ ऽ	एक प्लुत दो गुरू	मात्रा	= 7
आडाचारताल	–	ऽऽऽऽऽऽ	सात गुरू	मात्रा	= 14
दीपचन्दी	–	ऽ′ + ऽ′ +	प्लुत काकपद प्लुत काकपद	मात्रा	= 14

पंचमसवारी	–	S′ + + +	प्लुत काकपद काकापद	मात्रा	= 15
कहरवा	–	+ +	दो काकपद	मात्रा	= 8

उत्तर भारतीय तालों को कर्नाटक ताल पद्धति में भी उपरोक्त विधि से लिखा जाएगा।

4.8 ग्रह

ग्रह का साधारण अर्थ ग्रहण करना अथवा पकड़ना है। ग्रह शब्द का अर्थ घर अर्थात स्थान भी है। भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणि शब्द का प्रयोग किया है जिसका अर्थ भी ग्रहण करना ही है। संगीत में ताल का ग्रहण कब किया जाता है उसी के भेद ग्रह भेद के रूप में बताए गए। गायन, वादन तथा नृत्य में ताल को कब पकड़ा जाता है उसे ग्रह कहते हैं अर्थात ताल में जिस स्थान से क्रिया प्रारम्भ की जाती है उसे ग्रह कहा गया। ग्रहण करने के स्थान को ग्रह कहा गया।

ताल को गायन, वादन तथा नृत्य के साथ आरम्भ करने की दो स्थितियां हो सकती है, एक साथ तथा दूसरा आगे या पीछे। इन्हीं स्थितियों को सम ग्रह एव विषम ग्रह से प्रकट किया गया।

- **सम ग्रह –** गीत और ताल दोनों साथ–साथ उठे तो सम ग्रह।
- विषम ग्रह – गीत और ताल के आरम्भ के स्थान में अन्तर हो तो विषम ग्रह।

विषम ग्रह दो प्रकार का होता है – अतीत एवं अनागत जो निम्न है :–

- अतीत ग्रह – सम के आघात के उपरान्त यदि गायन, वादन व नृत्य की क्रिया आरम्भ हो तो अतीत ग्रह।
- अनागत ग्रह – सम के आघात के पूर्व यदि संगीत की क्रिया आरम्भ हो तो अनागत ग्रह।

भरत ने ग्रह के स्थान पर पाणी शब्द का प्रयोग किया था तथा उसके अनुसार इन्होंने समापाणि, अवपाणि तथा उपरिपाणी का उल्लेख किया जो क्रमशः समग्रह, अतीतग्रह तथा अनागत ग्रह हैं।

ग्रह संगीत तथा ताल की उठान अथवा आरम्भ को दर्शाता है। ताल गीत को प्रतिष्ठित करता है अतः ताल में ग्रह का विशेष महत्व है।

संगीत की रचनाओं में तथा ताल में सम वह स्थान है जहां से संगीत रचना तथा ताल आरम्भ की जाती है। संगीत कलाकारों द्वारा सुन्दर ढंग से सम का प्रयोग करना ही ग्रह भेद के अन्तर्गत आता है। सामान्य रूप से समग्रह का ही प्रयोग किया जाता है परन्तु चमत्कार उत्पन्न करने के लिए विषम ग्रह का प्रयोग होता है। इसका सुन्दर प्रयोग कलाकार की क्षमता एवं कुशलता पर आधारित होता है।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर से समग्रह को मध्यलय, अतीतग्रह का द्रुत लय तथा अनागत ग्रह का विलम्बित लय में प्रयोग हेतु उपयुक्त बताया। संगीत को जिस ग्रह से आरम्भ करते थे उसी पर समाप्त भी किया जाता था। समग्रह में समाप्त होने पर समावर्तन, अतीत ग्रह से समाप्त होने पर अधिकावर्तन तथा अनागत ग्रह में समाप्त होने पर हीनावर्तन कहा गया है।

4.9 जाति

जाति का अर्थ विशेष पहचान, विशेषता तथा विशेष वर्ग समूह से है जो दूसरे से भिन्न होता है। जिस प्रकार भारतीय समाज में जाति प्रथा है उसी प्रकार तालों को भी जाति में बांटा गया। मार्गी तालों के भरत ने दो भेद किए थे – चतुरश्र एवं त्रयश्र। इनको ही बाद में जाति की संज्ञा दी गई। अतः प्राचीन मार्गी ताल की दो ही जाति चतुरश्र एवं त्रयश्र थी। चच्चत्पुट चतुरश्र की तथा चाचपुट त्रयश्र जाति की थी।

चंत	चत	पु	टः		चा	च	पु	ट
गुरू	गुरू	लघु	प्लुत		गुरू	लघु	लघु	गुरू
2	2	1	3		2	1	1	2
चतुरश्र		चतुरश्र			त्रयश्र		त्रयश्र	

चच्चपुट ताल में दो खण्ड हैं। पहले खण्ड में दो गुरू मिलकर चार अक्षर अथवा चार मात्रा हो गई। दूसरे खण्ड में एक लघु और प्लुत मिलकर चार अक्षर बन गए इस प्रकार यह चतुरश्र जाति की ताल हुई। चाचपुट ताल के पहले खण्ड में गुरू एवं लघु तथा दूसरा खण्ड पहले खण्ड का प्रतिबिम्ब लघु एवं गुरू है। पहले एवं दूसरे खण्ड में क्रमशः तीन–तीन अक्षर अथवा मात्रा बन गई, इस प्रकार यह त्रयश्र जाति की ताल हुई। पांच मार्गी तालों में चच्चत्पट चतुरश्र तथा अन्य चार तालें त्रयश्र जाति की थी।

शारंगदेव ने संगीत रत्नाकर में चतुरश्र एव त्रयश्र के अतिरिक्त खण्ड भेद का भी उल्लेख किया है। खण्ड का अर्थ तोड़ने से है अतः चतुरश्र अंग के भेद का खण्डन करके खण्ड जाति प्राप्त हुई। प्लुत को गुरू में, गुरू को लघु में तथा लघु को द्रुत में विघटित किया जाता है। अतः संगीत रत्नाकर के समय तक चतुरश्र, त्रयश्र तथा खण्ड जाति अस्तित्व में आई। बाद में चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति के संयोग से मिश्र जाति बनी। खण्ड एवं मिश्र के संयोग से संकीर्ण जाति बनी। अतः वर्तमान में ताल की पांच जातियां चतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड, मिश्र तथा संकीर्ण है।

संगीत दर्पण में उपरोक्त पांच जातियों के लिए मात्राओं का उल्लेख है जिसके अनुसार त्रयश्र के लिए तीन मात्रा, चतुरश्र के लिए चार मात्रा, खण्ड के लिए पांच मात्रा, मिश्र के लिए सात मात्रा तथा संकीर्ण के लिए नौ मात्रा निर्धारित की गई है। खण्ड, मिश्र, संकीर्ण, जातियां चतुरश्र तथा त्रयश्र जाति से ही बनी हैं।

चतुरश्र
| | | |
4

त्रयश्र
| | |
3

खण्ड –चतुरश्र का आधा भाग करके तथा इसको त्रयश्र में मिलाने से बनी ।
| | | | |
5

मिश्र– चतुरश्र एवं त्रयश्र जाति को मिलाने से बनी।
| | | | | | |
7

संकीर्ण – खण्ड एवं चतुरश्र को मिलाने बनी।
| | | | | | | | |
9

उपरोक्त पांच जातियों का भारतीय समाज की वर्ण व्यवस्था के साथ भी जोड दिया गया। जिसके अनुसार चतुरश्र जाति को ब्राह्मण, त्रयश्र जाति को क्षत्रिय, खण्ड जाति को वैश्य, मिश्र जाति को शूद्र तथा संकीर्ण जाति को वर्ण संकर कहा गया। संगीत रत्नाकर में एला प्रबन्ध गायन की चार रीति नादावती, हंसावती, नन्दावती तथा भद्रावती वर्णित की है जो क्रमषः त्रतुरश्र, त्रयश्र, खण्ड एवं मिश्र जाति से सम्बन्धित है।

दक्षिण भारतीय संगीत की तालों का आधार उपरोक्त पांच जाति है। दक्षिण भारतीय संगीत की मूल तालें सात है तथा इनके जाति भेद से प्रत्येक की पांच तालें बनती है तथा इस प्रकार दक्षिण संगीत की 35 तालों का निर्माण होता है। लघु की काल अवधि सामान्यतः चार होती है परन्तु जातियों के लिए उसकी अवधि जाति के अनुसार बदल जाती है। अतः त्रयश्र में तीन, खण्ड में पांच, मिश्र में सात तथा संकीर्ण मे नौ हो जाती हैं। इन जातियों से विभिन्न लय भेद भी प्राप्त होते हैं जिनका उत्तर भारतीय ताल में प्रयोग होता है।

चतुरश्र – बराबर, दुगुन, चौगुन, अठगुन।
त्रयश्र – पौनी, डेढगुन, तिगुन, छःगुन।
खण्ड – सवाई गुन, चार में पांच मात्रा।
मिश्र – पौने दो गुन, चार में सात मात्रा।
संकीर्ण – सवा दो गुन, चार में नौ मात्रा।

4.10 कला

कला का सामान्य अर्थ किसी कार्य को भली भांति नियमानुसार करने का कौशल है। छन्द शास्त्रों में मात्रा को कला कहते हैं। शक्ति का आकार होने पर शिव को कलानिधि कहा जाता है। संगीत, काव्य, नाट्य, चित्र आदि की अभिव्यक्ति का माध्यम कला है। ताल के सन्दर्भ में कला प्रयोग निशब्द क्रिया, ताल का भाग तथा गुरू अंग अथवा दो मात्रा के लिए किया गया है। कला का प्रयोग ताल के विभिन्न स्वरूपों की रचना में किया जाता था। सशब्द क्रिया को भरत ने पातकला कहा।

भरत द्वारा ताल के तीन भेद यथाक्षर, द्विकल तथा चतुष्कल बताए जिसका मुख्य आधार गुरू है। अतः सम्भवतः इस कारण गुरू को कला कहा गया। यथाक्षर को एकल कहा गया है। एकल का अर्थ है जिसके प्रत्येक खण्ड अथवा पादभाग में एक–एक कला हो। एकल स्वरूप में सभी क्रियाएं सशब्द होती है अतः एकल भेद में सशब्द क्रिया कला है। मार्गी ताल की सभी तालों में एकल स्वरूप में केवल सशब्द क्रिया होती है जिसमें ताल उदघट्ट अपवाद है जिसके एकल स्वरूप में निशब्द क्रिया आरम्भ में होती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्कल भेदों में दोनों सशब्द एवं निशब्द क्रियाएं होती है अतः कला सशब्द एवं निशब्द दोनों क्रिया का प्रतीक है। पांच निमेष के बराबर समय से एक मात्रा तथा मात्रा के संयोग से कला बनती है। तालों के द्विकल तथा चतुष्कल भेदों में सारी कलाएं गुरू से ही होती है। ताल के नाम में प्रयुक्त अक्षरों के अनुसार यदि पात हो तो उसे यथाक्षर अथवा एकल, जब यह दो गुरू से युक्त होता है तो उसे द्विकल तथा चार गुरू से युक्त होने पर इसको चुतष्कल कहा जाता है। चच्चत्पुट तथा चाचपुट ताल की एकल, द्विकल तथा चतुष्कल भेद रचना विधि निम्न प्रकार से हैः–

	च	**च्च**	**त्पु**	**ट**
यथाक्षर अथवा एकल	ऽ	ऽ	।	ऽ'
प्रत्येक मात्रा को दुगनी की गई	ऽऽ	ऽऽ	।।	ऽ'ऽ'
सभी को गुरू में परिवर्तित करने पर	ऽऽ	ऽऽ	ऽ	ऽऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्काल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

	चा	**च**	**पु**	**ट**
यथाक्षर काल अथवा एकल	ऽ	।	।	ऽ
प्रत्येक मात्रा को दुगना किया	ऽऽ	।।	।।	ऽऽ
सभी को गुरू में परिवर्तित किया	ऽऽ	ऽ	ऽ	ऽऽ
द्विकल स्वरूप	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ	ऽऽ
चतुष्कल स्वरूप	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ	ऽऽऽऽ

चच्चत्पुट ताल में सभी को गुरू में परिवर्तित करने के लिए दो प्लुत को तीन गुरू में परिवर्तित किया गया। उसके बाद अन्तिम मात्रा से एक गुरू लेकर उसको तीसरी मात्रा में जोड़ा गया जिससे द्विकल स्वरूप बना तथा इसको दुगुना करने पर चतुष्कल स्वरूप प्राप्त होता है। चाचपुट में भी पहले प्रत्येक मात्रा दो गुना की गई उसके पश्चात सभी को गुरू में बदला जो कि बीच की दो लघु से एक गुरू बनाकर बनी, जिससे द्विकल भेद बना तथा इसका दो गुना करने पर चतुष्कल भेद प्राप्त हुआ।

प्राचीन समय में लय गति को धीमा करने के लिए कला का प्रयोग किया जाता था। वर्तमान समय में उत्तर भारतीय ताल पद्धति में भी ताल की लम्बाई, कला भेद का प्रयोग कर बढ़ाई जाती है। वर्तमान की ख्याल गायकी में विलम्बित तथा अतिविलम्बित लय का प्रयोग किया जाता है जिसको क्रमशः सामान्य भाषा में चौबीस मात्रा की एकताल एवं अठतालिस मात्रा की एकताल कहा जाता है। इस प्रकार विलम्बित में एकताल की लम्बाई 24 मात्रा की तथा अतिविलम्बित में 48 मात्रा की हो गई। एकताल का यह स्वरूप द्विकल तथा अतिबिलम्बित का रूपरूप चतुष्कल का हो गया। एकताल के इन स्वरूपों को चित्र मार्ग एवं वार्तिक मार्ग में मार्ग प्राण के अन्तर्गत दिया गया है। वर्तमान के ताल सन्दर्भ में द्विकल, चतुष्कल शब्द का प्रयोग नहीं होता है।

4.11 लय

लय पूरे ब्रहमाण्ड में व्याप्त है तथा इसमें विकृति आने पर प्रलय आ जाती है। सूर्य का उदय तथा अस्त होना, पृथ्वी के द्वारा सूर्य की परिक्रमा जो कि गति की समानता के साथ होती है, प्रकृति में लय के उदाहरण है। मानव शरीर रचना में हृदय के स्पन्दन की समान गति एवं नाडी की समान गति शरीर को स्वस्थ्य रखती है तथा इसमें अनियमितता आने पर मनुष्य अस्वस्थ हो जाता है। नाड़ी की तथा हृदय के स्पन्दन की समान गति ही लय है जो मानव के शरीर को सन्तुलित कर उसको स्वस्थ्य रखती है।

संगीत में भी लय का महत्वपूर्ण स्थान है तथा बिना लय के संगीत हो ही नहीं सकता। जो स्थान शरीर में नाड़ी स्पन्दन का है वही स्थान संगीत में लय का है। लय को जब मात्राओं के आवर्तन में व्यवस्थित किया जाता है तो ताल का निर्माण होता है, अतः ताल का आधार भी लय है। समय की समान गति ही लय है।

संगीत रत्नाकर ग्रन्थ में क्रिया के अन्त में जो विश्रान्ति अथवा विराम होता है उसको लय कहा गया है। संगीत दर्पण में पं. दामोदर द्वारा दो क्रियाओं को बीच होने वाल अन्तर काल को लय कहा है। संगीत पारिजात में भी उक्त परिभाषा का समर्थन किया है। संगीत पारिजात तथा संगीत दर्पण में लय की व्याख्या संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक के द्वारा ही की :–

क्रियान्तरविश्रान्तिलर्यः स त्रिविधोमतः।
तत्ताद्विरामकालेन द्रुतमध्यविलम्बिताः।।

विराम काल के तीन भेद द्रुत, मध्य तथा विलम्बित लय बताए। अतः लय तीन प्रकार की द्रुत, मध्य एवं विलम्बित मानी गई। द्रुत से दुगनी विश्रान्ति वाली लय मध्य तथा मध्य से दुगनी विश्रान्ति वाली लय को विलम्बित कहा गया है। अतः इन तीनों लयों के परस्पर सम्बन्ध हैं। अतः किसी एक को आधार मान कर ही अन्य दो को निश्चित किया जा सकता है, स्वतन्त्र रूप से नहीं। विलम्बित तथा द्रुत लय को अति विलम्बित तथा अति–अति विलम्बित तथा द्रुत के अति द्रुत तथा अति–अति द्रुत भेद क्रमशः ख्याल गायन शैली के विलम्बित ख्याल में तथा तराना एवं तन्त्र वाद्य पर झाला प्रस्तुत में वर्तमान में प्रयोग हो रहा है, जो कि कलाकार के कौशल पर निर्भर करता है। लय के भेद संगीत में रस तथा भाव की निष्पत्ति में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। द्रुत लय में रौद्र, वीर, वीभत्स, भयानक तथा अदभुत, मध्य लय में हास्य तथा श्रृंगार तथा विलम्बित लय में शान्त एवं करूण रस की निष्पत्ति बताई गई है। भरत ने नाट्यशास्त्र में ओद्य, अनुगत एवं तत्व को क्रमशः द्रुत, मध्य एवं विलम्बित के सापेक्ष बताया है।

संगीत में लय भेद द्रुत, मध्य एवं विलम्बित लय के प्रयोग होते हैं तथा इन सभी के उपयुक्त प्रयोग से संगीत कार्यक्रम सफल होता है। गायन में अतिविलम्बित एवं अति अति विलम्बित करने पर गीत के शब्द स्पष्ट नहीं रह पाते क्योंकि उनको लय एवं स्वर के साथ तोड़ना पड़ता है। अति द्रुत एवं अति–अति द्रुत लय में भी गति के शब्द स्पष्ट नहीं सुने जा सकते हैं। जिससे गीत के काव्य की आत्मा के साथ अनर्थ होता है। लय इतनी ही रखी जानी चाहिए कि गीत के काव्य में स्पष्टता रहे। तराना, निरर्थक शब्दों से बना होता है अतः इसमें अति द्रुत तथा अति–अति द्रुत लय का प्रयोग कर श्रोताओं की वाह–वाह लेने में कोई बुराई नहीं है। सामान्य संगीत के श्रोताओं को द्रुत लय में अधिक आनन्द आता है।

संगीत में लय का कोई प्रमाण निश्चित नहीं किया गया अर्थात विलम्बित लय कहने से यह पता नहीं चलता कि इसका समय माप क्या है। यदि 1 सेकेण्ड को विलम्बित लय में एक मात्रा मान लें तो इससे लय को प्रमाणित किया जा सकता है।

4.11.1 लयकारी – जैसा कि उपरोक्त बताया गया है कि द्रुत से दुगुनी विश्रान्ति वाली मध्य लय तथा मध्यलय से दुगनी विश्रान्ति लय विलम्बित लय कहलाती है। यह दुगुना करना ही लयकारी कहलाता है। अर्थात तीनताल को यदि दो गुना करेंगें तो तीनताल आठ मात्रा की होगी एवं यदि तीनताल की प्रत्येक मात्रा को चौगुना करेंगे तो तीनताल चारमात्रा की होगी, यही क्रमशः दुगुन एवं चौगुन की लयकारी कहलाएगी। दुगुन में विश्रान्ति काल आधा तथा चौगुन में विश्रान्ति काल 1/4 हो जाएगा। एक मात्रा में एक मात्रा से अधिक मात्राओं को प्रयोग करने पर लयकारी बनती है। मध्य लय विलम्बित लय की दुगुन है, द्रुत लय मध्यलय की दुगुन है एवं द्रुत लय विलम्बित लय की चौगुन की लयकारी है।

ताल के अंग लघु, गुरू, प्लुत एवं काकपद से भी लयकारी को समझा जा सकता है। लघु एक मात्रा, गुरू दो मात्रा, प्लुत तीन मात्रा तथा काकपद चार मात्रा प्रदर्शित करते हैं। अतः लघु की एक मात्रा के सापेक्ष गुरू दुगुन की, प्लुत तिगुन की तथा काकपद चौगुन की लयकारी प्रदर्शित करेंगे जो कि गुरू, प्लुत एवं काकपद को लघु में परिवर्तित करके प्राप्त होगी–

लघु	गुरू	प्लुत	काकपद
1	ऽ (1+1)	ऽ'(। । ।)	+ (1+1+1+1)

अतः एक मात्रा में दो मात्रा दुगुन, एक मात्रा में तीन मात्रा तिगुन एवं एक मात्रा में चार मात्रा चौगुन की लयकारी कहलाएगी। ताल की एक आवृत्ति में दुगुन दो बार, तिगुन तीन बार तथा चौगुन चार बार प्रयोग की जाएगी। इसके विपरीत एक आवृत्ति की दुगुन, तिगुन एवं चौगुन में ताल की आवृत्ति के आधे भाग, 1/3 एक तिहाई भाग तथा 1/4 एक चौथाई भाग में लयकारी प्रयोग होगी।

दुगुन, तिगुन, चौगुन लयकारी के अतिरिक्त भी आड़, कुआड, बिआड लयकारी का प्रयोग वर्तमान के संगीत में किया जाता है। आड़ लयकारी तिगुन की आधी अतः डेढ़ गुन की लयकारी जिसका अर्थ एक मात्रा में डेढ मात्रा है। जिसको 3/2 से प्रकट करते हैं। कुआड लयकारी सवागुन की लयकारी है अर्थात 1 मात्रा में सवा मात्रा जिसे 5/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में पांच मात्रा)। बिआड़ लयकारी पौने दो गुन की लयकारी है अर्थात एक मात्रा में पौने दो मात्रा जिसको 7/4 से प्रकट करते हैं (चार मात्रा में सात मात्रा)।

4.12 यति

यति का उल्लेख सर्वप्रथम भरत ने नाट्यशास्त्र में निम्न श्लोक के माध्यम से किया :–

लयप्रवृत्त वर्णानामक्षराणामक्षराणाम थगपि वा(च)।
नियमो या(यो) यतिः भात तु गीत वाद्यसमाश्रया।।

अर्थात वर्णों और अक्षरों में लय के लक्ष्य का बोध कराने वाला नियम यति कहलाता है। यति, गीत एवं वाद्य के आश्रित होती है।

शारंगदेव ने यति की परिभाषा निम्न श्लोक के माध्यम से की :–

'लयप्रवृत्तिनियमों यतिरित्याभिधीयते''

जिसके अनुसार लय प्रयोग के नियम को यति कहा है।

पं0 दामोदर ने भी संगीत दर्पण में संगीत रत्नाकर की परिभाषा को स्वीकार किया तथा उसमें भी उपरोक्त संगीत रत्नाकर में दिए गए श्लोक को उदधृत किया। भरत ने तीन प्रकार की यति का उल्लेख किया स्रोतोगता, गोपुच्छा तथा समायति। संगीत रत्नाकर में भी उक्त तीन यति का ही उल्लेख है परन्तु संगीत दर्पण में पांच यति– समा, स्रोतोगता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा का उल्लेख किया गया, जिसका समर्थन बाद में संगीत पारिजात, तालदीपिका आदि में भी किया गया।

अतः लय प्रयोग के नियम को यति कहते हैं और वह पांच प्रकार समा, स्रोतावता, मृदंगा, पिपिलिका तथा गोपुच्छा की होती है। इसके तीन लय भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय के प्रयोग के नियम निष्चित किए गए हैं।

समायति – आरम्भ, मध्य तथा अन्त तक एक ही लय प्रयोग होने पर समायति कहलाती है। अतः आरम्भ से अन्त तक विलम्बित लय, आरम्भ से अन्त तक मध्य लय तथा आरम्भ से अन्त तक द्रुत लय का प्रयोग समायति है। इसको निम्न चित्र से प्रदर्षित कर सकते हैं।

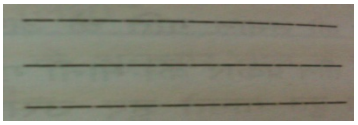

स्रोतागता – आरम्भ में विलम्बित, बीच में मध्यलय तथा अन्त में द्रुत लय का प्रयोग होने पर स्रोतागता यति होती है, जिसको निम्न चित्र से प्रदर्शित करेंगे।

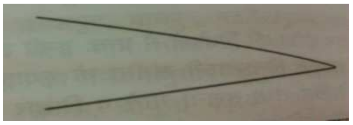

मृदंगा – इस यति का आधार मृदंगा का आकार है। जिसके अनुसार आरम्भ में द्रुत लय, बीच में विलम्बित लय तथा अन्त में फिर से द्रुत लय का अथवा आरम्भ एवं अन्त में मध्य एवं बीच में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर मृदंगा यति होती है। इसमें केवल दो लय प्रयोग अतः आरम्भ एवं अन्त की लय के सापेक्ष मध्य भाग में यह विलम्बित होती है।

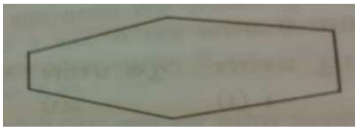

पिपिलिका – यह यति मृदंगा यति की विपरीत है तथा इस यति को चींटी से सम्बन्धित माना है। इसमें भी दो ही लय प्रयोग होती हैं। इसका आधार चीटी का आकार है जो कि आरम्भ एवं अंत का भाग मध्य भाग की अपेक्षा फैला हुआ होता है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा। अतः आरम्भ एवं अन्त में विलम्बित या मध्य तथा मध्य स्थान में मध्य या द्रुत लय का प्रयोग होने पर पिपिलिका यति होती है।

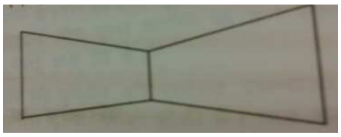

गोपुच्छा – इस यति का सम्बन्ध गोपुच्छ अथवा गाय की पूंछ के आकार से है जो कि निम्न चित्र से स्पष्ट होगा।

उक्त आकार के अनुसार आरम्भ में द्रुत, बीच में मध्य लय तथा अन्त में विलम्बित लय का प्रयोग होने पर यति गोपुच्छा कहलाती है तथा यह यति स्रोतगता की विपरीत है।

4.13 प्रस्तार

ताल के अंग द्रुत, लघु आदि (एक अथवा अधिक अवयवों) के आधार पर जो भेद बनते हैं उनको बनाने की विधि को प्रस्तार कहते हैं। प्लुत में द्रुत, लघु तथा गुरू को समाहित कर उनके विभिन्न संयोग से अनेक प्रकार बनते हैं। इनको बनाने की विधि तथा कुल मात्रा संख्या प्रस्तार के अर्न्तगत आती है। प्लुत के उन्नीस प्रस्तार निम्न प्रकार से बनाए जाते हैं:–

1	S'	
2	| S	प्लुत को लघु तथा गुरू में खण्डित करके।
3	0 0 S	दूसरे प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर बना।
4	S |	यह दूसरे प्रस्तार के अंग को उलट कर प्राप्त हुआ।
5	| | |	चौथे प्रस्तार के गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
6	0 0 ||	इसमें पांचवे प्रस्तार के बाई ओर के लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
7	0 | 0|	इसमें छठे प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान बदलने से प्राप्त किया।
8	| 0 0̇ |	इसमें भी सातवें प्रस्तार के द्रुत एवं लघु का स्थान परिवर्तन किया।
9	0 0 0 0 |	आठवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में परिवर्तित किया।
10	0 S 0	नौवें प्रस्तार के अन्तिम लघु को दो द्रुत में विभाजित कर तथा बाद में चार द्रुत से एक गुरू बना कर प्राप्त किया गया।
11	0 | | 0	दसवें प्रस्तार के गुरू को दो लघु में परिवर्तित कर।
12	| 0| 0	ग्यारवें प्रस्तार के लघु तथा द्रुत के स्थान परिवर्तित कर।
13	0 0 0 | 0	बारहवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित कर।
14	S 0 0	तेरहवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित करने पर छः द्रुत प्राप्त हुए जिससे पहले चार द्रुत को एक गुरू में परिवर्तित किया तथा बाद में दो द्रुत बचे।
15	| | 00	चौदहवें प्रस्तार के पहले गुरू को दो लघु में विभाजित किया।
16	00 |00	पन्द्रहवें प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया।
17	0 | 0 0 0	सोलहवें प्रस्तार के तीसरे स्थान के लघु को दूसरे स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
18	| 0 0 0 0	सत्रहवें प्रस्तार के दूसरे स्थान के लघु को प्रथम स्थान पर रखकर प्राप्त हुआ।
19	0 0 0 0 0 0	अठारवें प्रस्तार के लघु को दो द्रुत में विभाजित कर प्राप्त हुआ।

इस प्रकार द्रुत का एक प्रस्तार, लघु के दो प्रस्तार तथा गुरू के छः प्रस्तार बन सकते हैं।

द्रुत — 0
लघु — पहला प्रस्तार — \|
दुसरा प्रस्तार — 00
गुरू — पहला प्रकार — S
दूसरा प्रकार — \|\|
तीसरा प्रकार — 00\|
चौथा प्रकार — 0\| 0
पांचवां प्रकार — \| 0 0
छठा प्रकार — 0 0 0 0

दूसरे प्रस्तार में गुरू को लघु में विभाजित किया गया, तीसरा प्रस्तार में दूसरे प्रस्तार के पहले लघु को दो द्रुत में विभाजित किया तथा चौथे एवं पांचवें प्रस्तार में लघु को एक–एक कर बाई ओर स्थानांतरित किया गया तथा छठा एवं अन्तिम प्रस्तार में लघु को भी दो द्रुत में विभाजित किया गया। इस प्रकार गुरू के छः प्रस्तार प्राप्त किए गए। अतः प्रस्तार अंगों को खण्डित कर एवं उनके विभिन्न संयोगों से देशी तालें बनी।

4.14 ताल के प्राण का वर्तमान संदर्भ में उपयोगिता

भारत में दो तालिपि उत्तर भारतीय तथा कर्नाटक ताल लिपि प्रचलित हैं। उत्तर भारतीय तालिपि में दस प्राण में से केवल लय, जाति, ग्रह, क्रिया तथा यति ही प्रयोग में आती है। लय संगीत के लिए आवश्यक अंग है। लय के तीन भेद विलम्बित, मध्य तथा द्रुत लय का प्रयोग किया जाता है तथा इसके अतिरिक्त अति विलम्बित तथा अति द्रुत का प्रयोग संगीत रचनाओं में होता है। द्रुत गति की तान, तोडे उत्तर भारतीय संगीत में रोचकता तथा आकर्षण उत्पन्न करते हैं। जाति का प्रयोग लयकारी प्रदर्शन में देखने को मिलता है। ध्रुपद, धमार गायन शैली में द्रुत गति की तानों का प्रयोग नहीं होता बल्कि संगीत रचना की लयकारी प्रस्तुत की जाती है। तबला तथा पखावज वादक वाद्य पर लयकारी का प्रदर्शन कर अपने कौशल का परिचय देते हैं। यति का प्रयोग तबला व पखावज की गत की रचनाओं में होता है। प्रस्तार का कुछ अंश तबला के कायदे व रेले आदि के पल्टों में देखने को मिलता है। क्रिया के रूप में ताली तथा खाली का ही प्रयोग है। संगीत में वैचित्र के उद्देष्य से विषय ग्रह का प्रयोग भी किया जाता है।

कर्नाटक ताल में क्रिया, अंग, ग्रह, जाति, लय, यति एवं प्रस्तार का वर्तमान में भी प्रयोग हो रहा है। क्रिया कर्नाटक संगीत का मुख्य अंग है। प्रत्येक संगीत प्रस्तुति में हाथ से ताली देकर ताल दिखाना आवष्यक होता है जो कि क्रिया के अर्न्तगत आता है। ताल को अंग द्वारा ही प्रदर्शित किया जाता है। समग्रह एवं विषम ग्रह का प्रयोग इस तालिपि में है। कर्नाटक ताल पद्धति जाति पर ही आधारित है तथा जाति भेद के आधार पर सात मूल तालों से पैंतीस तालों का निर्माण किया जाता है, जो कि प्रस्तार के अन्तर्गत आता है। लय प्रत्येक संगीत का अनिवार्य अंग तथा यति का प्रयोग कलाकार अपनी क्षमता के अनुसार करता है।

अभ्यास प्रश्न

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. सशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
2. निशब्द क्रिया की संख्या कितनी है?
3. मार्ग कितने प्रकार के हैं?
4. संगीत रत्नाकर में दी गई एक अंग की कौन सी तालें है?
5. अणु द्रुत तथा प्लुत को किस संकेत चिन्ह से प्रदर्शित किया जाता है?
6. झपताल एवं रूपक ताल को अंगों के माध्यम से प्रस्तुत करें।
7. जाति की संख्या कितनी है?
8. 7/4 लयकारी को क्या कहते हैं?

4.15 सारांश

संगीत का आधार ताल है तथा ताल के निरूपण का आधार प्राचीन शास्त्रीय संगीत द्वारा निर्धारित दस प्राण हैं। प्रस्तुत इकाई में आपने ताल के इन दस प्राणों का विस्तृत अध्ययन किया तथा आप ताल एवं ताल के निरूपण के सिद्धान्त को ताल के दस प्राण के माध्यम से समझ गए होंगे। ताल के दस प्राण यद्यपि प्राचीन मार्गी तथा देशी तालों के सन्दर्भ में ही प्रस्तुत किए गए परन्तु इन प्राणों के अध्ययन से वर्तमान ताल प्रकरण में दिशा निर्देश प्राप्त होता है, जिससे ताल पद्धति को समृद्ध किया जा सकता है। वर्तमान ताल को समझने के लिए उनके प्राचीन मूल स्वरूप को समझने की आवश्यकता है जो कि आपने इस इकाई के

माध्यम से समझा है। इस इकाई के अध्ययन के पश्चात आप अपनी क्षमता अनुसार ताल के नए प्रयोग तथा रचनाओं के निर्माण का प्रयास कर सकेंगे।

4.16 अभ्यास प्रश्नों के उत्तर

क) निम्न प्रश्नों के उत्तर दीजिए :–

1. चार
2. चार
3. चार
4. आदिताल एक लघु ।, करूण ताल एक गुरू ऽ
5. अणुद्रत ‿ प्लुत ऽ'
6. झपताल ऽ ऽ' ऽ ऽ' रूपक – ऽ' ऽ ऽ
7. पांच
8. बिआड लयकारी

4.17 सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

1. सेन, अरूण कुमार, भारतीय तालों का शास्त्रीय विवेचन, मध्य प्रदेश हिन्दी अकादमी, रायपुर, म0प्र0।
2. चौधरी, सुभद्रा, भारतीय संगीत में ताल और लय विधान, कृष्ण बदर्स, अजमेर।
3. स्वामी पागलदास, ताल के दस प्राण, तबला अंक, संगीत कार्यालय, हाथरस, उ0प्र0।

4.18 निबन्धात्मक प्रश्न

1. मार्गी तथा देशी ताल के सन्दर्भ में काल, मार्ग, क्रिया एवं अंग की व्याख्या कीजिए।
2. लय, जाति, यति तथा प्रस्तार की वर्तमान सन्दर्भ में व्याख्या कीजिए।
3. वर्तमान सन्दर्भ में ताल के दस प्राण की उपयोगिता पर प्रकाश डालिए।